उस यज्ञ में सभी सर्प नहीं जले बल्कि आतताई सर्प ही जले।

ब्रह्मा जी कहते हैं -

ये दन्दशूकाः क्षुद्राश्च पापाचारा विषोल्बणाः।
तेशां विनाशो भविता न तु वै धर्मचारिणः।।

'जन्मेजय के सर्प यज्ञ में उन्हीं सर्पों का विनाश होगा जो प्रायः लोगों को डसते रहते हैं, क्षुद्र स्वभाव, पापाचारी तथा प्रचण्ड विष वाले हैं। किन्तु जो धर्मात्मा हैं उनका नाश नहीं होगा'।

इसके समाप्त करने का उपाय बताते हुए ब्रह्मा जी कहते हैं कि:

आस्तीको नाम यज्ञं स प्रतिषेस्यति तं तदा।
तत्र मोक्ष्यन्ति भुजगा ये भविष्यन्ति धार्मिकाः।।

उन्हीं (जरत्कारू) के आस्तीक नाम का एक महातपस्वी पुत्र उत्पन्न होगा जो उस यज्ञ को बंद करा देगा। अतः जो सर्प धार्मिक होंगे वे जलने से बच जायेंगे।

आस्तीक ऋषि माता के आदेश पर जन्मेजय से वर मांगकर यज्ञ को बन्द करा देते हैं। तक्षक बच जाता है। सर्प आस्तीक को वरदान देते हैं कि जो हमें आस्तीक की सौगन्ध देगा हम उसका अहित नहीं करेंगे। यह आज भी अनुभूत है। सर्प से कहो तुम्हें आस्तीक की सौगन्ध है तुम चले जाओ। वह हानि नहीं करेगा।

आस्तीक की माता जरत्कारू को 'मंशा' भी कहा जाता है। इनकी सिद्ध पीठ हरिद्वार में एक पर्वत पर है। एक स्थान मेरठ में मैडिकल कॉलिज के सामने भी है। इन्हीं मंशा देवी-जरत्कारू एवं आस्तीक की तपस्थली है यह तालाब। मंशा देवी की तपस्थली 'महामाई' के नाम से प्रसिद्ध है। इतने पवित्र स्थान का होना परीक्षितगढ़ वासियों का सौभाग्य है तो उसका तिरस्कार उनका दुर्भाग्य। परीक्षितगढ़ का कोई भी निवासी इसके विषय में कुछ नहीं जानता।

नवल देह का कुआं (अमृत कूप)

क्या किसी कुएं के जल के स्नान मात्र से कोढ़ (कुष्ठ) ठीक हो सकता है? मानो या न मानो लेकिन इस वैज्ञानिक युग में भी यह सत्य है। परीक्षितगढ़ में मवाना बस स्टैण्ड के एकदम समीप है अमृत कूप या नवल देह का कुआं। सदियों से कुष्ठ रोगी यहां पर स्नान एवं इस जल के प्रयोग से ठीक होते रहे हैं। परन्तु शर्त यह है कि रोगी यहीं पर रहे और भिक्षा मांग कर खाये। ठीक होने के पश्चात् चाहे जहां जाये। कहते हैं कि इस कुएं में अमृत का प्रभाव है। वर्ष में कभी भी एक बार इसका जल दूधिया हो जाता है। इस जल को सभी जनता विशेष रूप से प्रयोग करती है। कभी-कभी एक वर्ष से अधिक भी हो जाता है लेकिन दूधिया होता अवश्य है। यदि वैज्ञानिकता की बात करें तो इस जल में कुछ ऐसे औषधीय तत्व या गुण हैं जो कुष्ठ को ठीक करते हैं। इस जल के रासायनिक विश्लेषण से इसके औषधीय तत्वों का पता लगाकर कुष्ठ की अचूक औषधि बनाई जा सकती है। लेकिन करे कौन?

कितना पुराना है यह कुआं? किसने बनाया इसे? क्या है इसका इतिहास? कौन है नवल देह? आदि के विषय में निम्न जन श्रुतियां प्राप्त होती हैं। पाण्डु पुत्र अर्जुन एवं पाताल (अमेरिका) के किसी भू-भाग का नागवंशीय राजा वासुकि नाग दोनों घनिष्ठ मित्र थे। महाभारत युद्ध से कुछ समय पूर्व दोनों

मिलते हैं। मित्रता को सम्बन्धों में बांधने की बात चली। अर्जुन की पुत्रवधु (अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा) एवं वासुकि की पत्नी नम्रदा दोनों गर्भवती थीं। विचार एवं प्रण किया जाता है कि यदि दोनों में से किसी एक को पुत्र एवं दूसरी को पुत्री का जन्म हुआ तो दोनों का विवाह करके सम्बन्ध स्थापित कर लेगें। महाभारत युद्ध की समाप्ति पर उत्तरा की कोख से परीक्षित का एवं वासुकि की पत्नी की कोख से पुत्री का जन्म होता है। कन्या अत्यन्त सुन्दर एवं स्वर्ण जैसी कान्तिमान थी इसलिए उसका नाम नवल देह रखा गया। वासुकि (नागवंशी) स्वयं को अर्जुन (कुरुवंशी) से उच्च कुलीन समझता था। अतः उसने परीक्षित से नवल देह का विवाह करने में अपना एवं जाति का अपमान समझ कर नवल देह का लालन-पालन गुप्त रूप से किया तथा अर्जुन के भय से नवल देह को मरा प्रचारित करा दिया।

युवा परीक्षित को हस्तिनापुर की राज गद्दी पर आसीन कर पांचों पाण्डव द्रौपदी सहित मृत्युवरण के लिए हिमालय चले गए। राजा वासुकि को कुष्ठ रोग हो गया। वैद्यों-ज्योतिषियों के परामर्श पर युवा नवल देह परीक्षितगढ़ के इस अमृत कूप (कुआं सम्भवतः बाद में बना, उससे पूर्व यहां अन्य कोई जल स्रोत था अथवा महाभारत के काफी पश्चात् कुएं का जीर्णोद्धार किया गया) से जल लेने आई। गुप्तचरों द्वारा परीक्षित को सूचना मिलने पर परीक्षित ने अपनी मंगेतर समझकर नवल देह को रोक कर विवाह का प्रस्ताव रखा। नवल देह भी परीक्षित को अपना मंगेतर मानती थी। इसलिए उसने अमृत कूप के जल से पिता को स्नान कराने के पश्चात् पुनः आकर विवाह करने का वचन दिया। ज्योतिषियों के आदेशानुसार जब नवल देह ने अपने पिता के ऊपर इस कुएं का जल डाला तो अपने पैर से वासुकि के पैर का अंगूठा दबा लिया ताकि वहां तक जल न पहुंच सके। वासुकि का कुष्ठ रोग दूर हो गया परन्तु उसी अंगूठे में शेष रह गया। इसे ठीक करने के बहाने से पिता द्वारा बार-बार मना करने के पश्चात् भी नवल देह पुनः जल लेने आई और परीक्षित से विवाह किया। इससे आगे सब कुछ मौन है। इसी आधार पर नाग वंशियों ने छल कपट एवं श्रृंग ऋषि के श्राप के प्रभाव से राजा परीक्षित के प्राण हरण किये। बदला लेने के लिए परीक्षित के पुत्र जन्मेजय ने सर्पयज्ञ (नागों से युद्ध) द्वारा नाग वंश का विनाश किया। इस दोष से जन्मेजय को भी कुष्ठ हुआ और उसने भारत छोड़ कर जर्मनी देश आबाद किया। यह है नवलदेह और कुएं का इतिहास। इसी प्रकार का एक कुआं हस्तिनापुर में रघुनाथ महल के पास भी है लेकिन वह सूख चुका है। कहा जाता है कि यदि नवल देह अंगूठा न दबाती तो संसार से कुष्ठ रोग तभी समाप्त हो जाता। इसलिए कुष्ठ का प्रारम्भ पैर की अंगुलियों से होता है।

मेरठ जनपद के परीक्षितगढ़ कस्बे में मौजूद अद्भुत गुणों से युक्त नवलदेह का प्राचीन कुंआ

परीक्षितगढ़ के कुएं

किसी समय परीक्षितगढ़ में विभिन्न काल खण्डों में निर्मित लगभग पचास कुएं थे। आज से 30-35 वर्ष पहले तक लगभग सभी कुएं शुद्ध जल से परिपूर्ण थे। यह वह समय था जबकि जल का मुख्य साधन कुएं ही होते थे। गरीब व्यक्ति इन कुओं से स्वयं पानी भरते थे तो साधन सम्पन्न व्यक्तियों के घर कहारन (कश्यप/धींवर जातीय महिलाएं) एवं सक्के (चमड़े की एक बड़ी थैली द्वारा घर-घर पानी भरने वाली मुस्लिम जाति) पानी भरते थे। इससे उन्हें आय भी होती थी। आस-पास की स्त्रियां समूह में पानी भरतीं एवं एक साथ बैठकर कपड़े धोतीं तो अपने सुख-दुःख की बातों से अनायास ही एक-दूसरे के सुख-दुःख में सम्मिलित होने का मानसिक संकल्प भी लेतीं। इस प्रकार कुएं सामाजिक समरूपता के सूत्र भी थे। अस्तु, लगभग सभी कुएं मानव की हवस के शिकार हो गये। अब यहां पर निम्न कुएं ही शेष रह गए हैं।

1. गांधारी तालाब का कुआं
2. शृंग ऋषि आश्रम का कुआं
3. नवलदेह कूप
4. गोपेश्वर मन्दिर कूप
5. देवी मन्दिर कूप
6. बड़ा कुआं
7. रानी का कुआं

उपरोक्त कूपों में प्रथम पांच कूप धार्मिक स्थलों पर होने के कारण धार्मिक महत्व के हैं। शेष दो कुओं के विषय में कहा जाता है:

1. बड़ा कुआं - यह कुआं परीक्षितगढ़ स्थित रानी के महल से उत्तर में शैल शिवालय के समीप है। यह कुआं राजा की घुड़साल एवं दीवान के महल के समीप था इसलिए इन स्थानों पर जल की आपूर्ति यहीं से की जाती थी। इस प्राचीन कुएं का जीर्णोद्धार मराठों द्वारा कराया गया था।

2. रानी का कुआं - यह कुआं महल के एकदम समीप दक्षिण में मौ. राजा दरवाजे में है। यहां से महल की जलापूर्ति की जाती थी। इसका जीर्णोद्धार राजा जैत सिंह के समय में किया गया था। चूंकि यहां से केवल रानी (महल) के लिए पानी जाता था इसलिए इसे रानी का कुआं कहते थे। दोनों कुएं लगभग 10 वर्ष पहले तक चालू थे। इनमें आज भी जल है लेकिन पानी के साधन बढ़े तो लोग कुओं को भूल गये। कुछ वर्षों में ये भी समाप्त हो जायेंगे। कहा जाता है कि ये सभी कुएं मूलतः महाभारतकालीन हैं।

जाटों वाला तालाब

परीक्षितगढ़ से तीन किलोमीटर ईशान (NE) में स्थित ग्राम पूठी में है जाटों वाला तालाब। तालाब ग्राम से आग्नेय (SE) में है। यह कच्चा तालाब लगभग तीन एकड़ का है। तालाब के एक किनारे पर शीतला माता का मन्दिर बना है। ग्रामीण श्रद्धा-भक्ति से यहां पूजा-अर्चना करने आते हैं। तालाब एवं पूठी ग्राम का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है:

परीक्षितगढ़ की स्थापना से पहले यह समस्त क्षेत्र विशाल वन था। कौशिकी नदी के तट पर यहां विश्वामित्र, शृंग ऋषि, महर्षि च्यवन एवं मार्कण्डेय आदि ऋषियों के आश्रम थे। इसीलिए पूठी के समीप से बहने वाली कौशिकी नदी अति

पवित्र मानी जाती थी। पूठी के पूर्व में इसके चिन्ह आज भी दृष्टि गोचर होते हैं। कहा जाता है कि पूठी के इस क्षेत्र में अनेक वनौषधियों के साथ संजीवनी बूटी एवं सोमलता जैसी दुर्लभ एवं पुष्टिकारक बूटियां भी पाई जाती थीं। चूंकि यहां उत्पन्न बूटियां मानव की पुष्टि (आरोग्य एवं स्वास्थ्यप्रद) करती थीं इसलिए इस क्षेत्र को पुष्टि क्षेत्र कहा जाता था।

जन्मेजय के सर्पयज्ञ में सम्मिलित होने वाले ब्राह्मणों को दक्षिणास्वरूप जो भू-सम्पत्तियां दी गईं उनमें पूठी क्षेत्र भी एक था। उन्हीं के वंशज यहां के जमींदार होकर अन्यों की भांति स्वयं को त्यागी कहने लगे। इस प्रकार यह त्यागी बाहुल्य ग्राम हो गया। औरंगजेब की इस्लामी तलवार के साये में अधिकांश त्यागी मुसलमान बन गये। सत्ता परिवर्तनों के दौर में देश के साथ-साथ पूठी भी अनेक राजवंशों के अधिकार में रहा।

सन् 1748 ई. में परीक्षितगढ़ सहित यह समस्त क्षेत्र गुर्जर राजा जैत सिंह के अधिकार में आया तो यहां एक वैश्य एवं ब्राह्मण परिवार लाकर बसाया गया। इस प्रकार यहां के समस्त वैश्य एवं ब्राह्मण एक परिवार के ही वंशज हैं। सन् 1780 ई. के लगभग राजा जैत सिंह की मृत्योपरान्त उनके दत्तक पुत्र कुंवर किशन सिंह राजा बने तो सत्ता संचालन का केंद्र जैत सिंह के सेनापति खेमकरण शर्मा रहे। जैत सिंह के ताऊ के लड़के नैन सिंह सत्ता संघर्ष में हार कर महाराजा पटियाला की सेना में सम्मिलित हो गये एवं सिख धर्म ग्रहण कर लिया। महाराजा पटियाला से अच्छे सम्बन्ध बना कर नैन सिंह अपनी सहायता के लिए जनरल सरदार दीदार सिंह व कमांडर अजीत सिंह के नेतृत्व में पांच सौ वीर घुड़सवार सैनिक लेकर आया एवं बहसूमा के दीवाने खास में पूजा करते खेमकरण शर्मा को समाप्त कर दिया। सत्ता नैन सिंह के हाथ में आ गई। नैन सिंह ने महाराजा पटियाला से दोनों सरदारों को अपने लिए मांग लिया और उन्हें पूठी में बसा दिया। तब दोनों सरदारों ने अपने दो भाई चतर सिंह तथा अचपल सिंह को भी अपने पास बुला लिया।

कुछ समय पश्चात् इनकी वृद्धा मां के देहावसान पर कोई ग्रामीण सम्मिलित नहीं हुआ तो सरदारों ने इसे अच्छा न मान कर गांव छोड़ दिया और राजा नैन सिंह ने उन्हें बढ़ला-8 में बसा दिया। इन सरदारों ने जल की सुविधा के लिए अपनी कृषि भूमि में स्थित इस छोटे से तालाब को विस्तृत किया तो यह जाटों वाला तालाब कहा जाने लगा। परन्तु इससे पहले तालाब के किनारे पर माता का स्थान होने के कारण दूर-दूर से लोग यहां जात (एक धार्मिक अनुष्ठान) देने आते थे इसलिए यह जात वाला तालाब कहा जाता था। चूंकि इस पर जाटों का आधिपत्य हो गया था इसलिए यह जात वाले से जाट वाला हो गया। उपरोक्त सरदार परिवार तो बढ़ला-8 में जा बसा परन्तु उनका एक निसंतान भाई अचपल सिंह पूठी में ही रहा। अचपल सिंह साधु स्वभाव का सरल-सज्जन, ब्रह्मचारी व्यक्ति था इसलिए मृत्योपरान्त उसका एक स्थान बनवाया गया जो अचपल पीर (वीर) के नाम से जाना जाता था। अब वह भी समाप्त हो गया है। इस प्रकार पूठी से जाटों का अस्तित्व ही समाप्त हो गया। बॉलीवुड के प्रसिद्ध पटकथा एवं संवाद लेखक पंडित मुखराम शर्मा इसी पूठी के मूल निवासी थे।

बूढ़ी गंगा झील

परीक्षितगढ़ से गढ़मुक्तेश्वर के सम्पर्क मार्ग पर परीक्षितगढ़ से लगभग दस किलोमीटर है मध्य गंगा नहर। इससे लगभग तीन किलोमीटर है देश की पवित्रतम् नदी गंगा मां। किसी समय गंगा नवनिर्मित मध्य गंगा नहर अथवा आसिफाबाद खोले के एकदम नीचे बहती थी। धीरे-धीरे वह दो किलोमीटर दूर हट गई और अपने पीछे छोड़ गई कहीं झील तो कहीं-कहीं दलदली

भूमि। यह हस्तिनापुर से लेकर फैलती-सिकुड़ती गढ़ मुक्तेश्वर तक चली गई है। इस विशाल झील को अब बूढ़ी गंगा कहा जाता है। यह झील अब हस्तिनापुर अभयारण्य के अन्तर्गत आती है।

पानी-भोजन एवं छिपने के लिए ऊंची-ऊंची घास की सुलभता होने के कारण यह स्थानीय एवं प्रवासी पक्षियों के लिए आदर्श स्थल है। सुर्खाब, साइबेरियन सारस तथा अन्य विदेशी पक्षी जाड़ों में यहां विशेष रूप से प्रवास करने आते हैं। उस समय इन्हें देखकर प्रकृति प्रेमियों को असीम आनन्द की अनुभूति होती है। यद्यपि यह संरक्षित अभयारण्य है परन्तु शिकारियों की कोई कमी नहीं है। शिकारी इसे आज भी शिकारगाह के रूप में प्रयोग करते हैं तथा निरीह एवं अतिथि पक्षियों को मार कर अपने को बहादुर और बड़ा निशानेबाज होने का दम्भ भरते हैं। कानून तो जैसे उनके लिए है ही नहीं।

नील का कुआं

ऐतिहासिक तथ्यानुसार अंग्रेजों द्वारा की गई नील की खेती देश के माथे पर कलंक थी। लेकिन इस कलंक के लिए भारतीय जमींदार एवं अभिजात्य वर्ग भी कम दोषी नहीं था। इसकी मिसाल 'बड़ा गांव' में प्राप्त होती है। किठौर-मवाना मार्ग पर किठौर से लगभग आठ किलोमीटर उत्तर एवं परीक्षितगढ़ से लगभग चार किलोमीटर दक्षिण में मुख्य मार्ग से लगभग दो किलोमीटर है बड़ा गांव। इसमें हिन्दू-मुस्लिम आबादी लगभग बराबर है। आज तक कोई साम्प्रदायिक घटना न होना गांव की विशेषता है। इसी गांव में है नील की कोठी एवं कुआं। जैसे ही 1780 ई. में नील की खेती का आरम्भ हुआ, अंग्रेजों को किसानों के विरोध सहित अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। तब अंग्रेजों ने कहीं जमींदारों को अपने पक्ष में किया और कहीं कान्ट्रेक्ट खेती का सहारा लिया।

इसी कान्ट्रेक्ट के अनुसार बड़ा गांव में नील की खेती आरम्भ की गई। जिसके लिए सन् 1781 ई. में 12 विशाल हौज बनवाए गए। हौजों तक पानी पहुंचाने के लिए एक कुएं का निर्माण कराया गया। कुएं से ऊंची टंकी को भरा जाता था। टंकी से नालियों द्वारा पानी हौजों तक पहुंचता था। इस समस्त उद्योग में चार साझीदार थे। गुलाब खां व साहब खां निवासी बड़ा गांव आधे के मालिक चौ. याह्या खां चौथाई के एवं स्याना कस्बे के एक निवासी 25 प्रतिशत के शेयर धारक थे। अब यह स्थान अभिलेखों में नील की कोठी के नाम से अंकित है एवं ग्राम समाज के अधिकार में है। मौके पर लगभग एक एकड़ भूमि में वनखण्ड सा प्रतीत होता है।

नील की खेती से किसान बरबाद हो गये थे। ज़मीन बंजर होने लगी थी। किसान अन्न के अभाव में भूखे मरने लगे। उन्हीं के खेत उन्हीं की मजदूरी और वह भी लगभग मुफ्त। अनेक विद्रोहों के पश्चात् सरकार ने सन् 1850 ई. में चाय बागान व नील की खेती के किसानों के लिए कुछ सुधारों की घोषणा की थी।

पाण्डवों का कुआं

इसी गांव में एक कुआं भी है जिसे पाण्डवों का कुआं कहा जाता है। इस कुएं का इतिहास जानने से पूर्व गांव का इतिहास समझना आवश्यक है। मथुरा से हापुड़-किठौर परीक्षितगढ़ होता हुआ एक सीधा रास्ता हस्तिनापुर पहुंचता था। इस मार्ग पर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पानी के लिए कुएं बनाये गये थे तो विश्राम के लिए छायादार वृक्ष एवं विश्राम स्थल भी बनाये गये थे। किठौर में कृष्ण की गढ़ी थी तो इस गांव में साधारण यात्रियों के लिए कुआं एवं विश्राम स्थल। महाभारत के पश्चात् यह सब काल के गाल में समा गया। सन् 1200 ई. के लगभग मवाना के समीप के बारह गांव के ज़मींदार संसार सिंह त्यागी (अग्निहोत्री) ने इस क्षेत्र की कृषि भूमि लेकर यहां पसवाड़ा, कुआं खेड़ा, रहदरा, बड़ा गांव एवं कैली रामपुर स्थापित किये। उन्होंने यह ज़मीन क्रय की या अन्य किसी रास्ते से उनके पास आई एवं उससे पूर्व इन गांवों के नाम क्या थे या किस रूप में थे पता नहीं चलता।

संसार सिंह के दो पुत्र भिक्खन सिंह व सुक्खन सिंह हुए। इल्तुतमिश के छोटे पुत्र एवं तत्कालीन शासक नासिरूद्दीन महमूद के मुसलमान बनाने का आन्दोलन या अन्य किसी कारणवश सन् 1248 ई. में बड़े पुत्र भिक्खन सिंह धर्म परिवर्तन करके मुस्लिम बन गये जबकि छोटे पुत्र सुक्खन सिंह हिन्दू ही रहे। भिक्खन के नाना चरथावल (मुजफ्फरनगर) के दौलत सिंह थे तो ससुराल बीटा में थी। भिक्खन सिंह से बने भिक्खन खां को जब इस स्थान की महिमा का पता चला तो उन्होंने यहां गांव बसा लिया। चूंकि यह गांव बड़े भाई के द्वारा बसाया गया था इसलिए इसका नाम बड़ा गांव पड़ गया। छोटा भाई सुक्खन सिंह जहां रह गया उसका नाम रहदरा प्रसिद्ध हो गया। दोनों गांवों एवं परिवारों में आज भी पूर्ववत भाईचारा है। दोनों ही त्यागी लिखते हैं।

सन् 1746 ई. में यहां का शासक जैत सिंह एवं राजधानी परीक्षितगढ़ हो गई। सन् 1801 ई. में जैत सिंह के ताऊ-जाद भाई एवं तात्कालिक शासक नैन सिंह नागर ने यह गांव परीक्षितगढ़ स्थित देवी मन्दिर के पुजारियों को भरण-पोषण हेतु दे दिया। कुछ समय पश्चात् गिदौड़ियों (एक सेर अथवा आधा सेर के मीठे लड्डू जैसे) के विवाद पर राजा ने यह गांव वापस ले लिया। सन् 1876 ई. में परीक्षितगढ़ एवं लढ़ौंरा रियासत के विलय के साथ ही बड़ा गांव लढ़ौंरा रियासत में चला गया।

चूंकि पाण्डवों द्वारा निर्मित या पाण्डव कालीन यह कुआं मुख्य मार्ग पर स्थित था इसलिए समय-समय पर इसका जीर्णोद्धार होता रहा। भिक्खन सिंह ने भी इसका जीर्णोद्धार कराया था। बाद में यह गांव पुजारियों के पास चला गया तो उन्होंने भी इसका जीर्णोद्धार कराया। उस समय इस पर चड़स चलती थी। चड़स चमड़े का बना विशाल थैला सा होता था जिसमें पानी भरा जाता था और इसे बैल खींच कर कुएं से बाहर निकालते थे। यह आवश्यकतानुसार एक क्विंटल से चार क्विंटल तक की धारिता का बनाया जाता था। इससे फसल की सिंचाई की जाती थी। इस कुएं के पास कदम्ब आदि के अनेक छायादार वृक्ष थे। आज भी यहां बैठकर असीम शान्ति का अनुभव होता है। उस काल का एक कदम्ब का वृक्ष लालचवश कुछ लोगों ने काट लिया। एक कदम्ब वृक्ष आज भी पुरानी कहानी कह रहा है। अब यहां उपरोक्त परिवार के कब्रिस्तान हैं। यहां पर गांव के स्थापना काल का एक तालाब भी है।

किठौर के तालाब

मेरठ-गढ़मुक्तेश्वर मार्ग पर मेरठ से लगभग 30 किलोमीटर है कस्बा किठौर। किठौर सहित आस-पास के अधिकांश गांव मुस्लिम बाहुल्य वाले हैं। किसी समय किठौर के चारों ओर तालाब थे लेकिन अब केवल दक्षिण और उत्तर के ही शेष बचे हैं। दक्षिण का तालाब लगभग 125 एकड़ का था जो अब मात्र 40 एकड़ के लगभग शेष बचा है। इसकी भी डहर, गीली-सूखी ज़मीन सी बन गई है। उत्तर का तालाब घट तो गया है लेकिन पानी से परिपूर्ण है। यह किठौर-परीक्षितगढ़ मार्ग पर है। किठौर के पश्चिम में एक फरिश्तों वाला तालाब भी है। क्या है इन तालाबों का इतिहास? क्या रहस्य है मुस्लिम बाहुल्य गांवों का? आईये इसे परत-दर-परत खोलने का प्रयत्न करते हैं। मथुरा से खुर्जा-हापुड़ होते हुए सीधा मार्ग था हस्तिनापुर को। पाण्डवों एवं कृष्ण का इसी रास्ते से आवागमन होता था। किठौर में पड़ाव अथवा विश्राम स्थल था। विशेष रूप से कृष्ण भगवान का ठौर होने से इस स्थान को कृष्ण का ठौर अथवा किशन ठौर कहते थे जो बाद में किठौर हो गया। यहां पर भगवान कृष्ण की गढ़ी थी जहां बलराम बैठकर न्याय करते थे। किठौर में आज भी यह स्थान कृष्ण गढ़ी के नाम से विख्यात है। गढ़ी के चारों ओर अति विशाल खाई थी जिसमें सदैव जल भरा रहता था। महाभारत के पश्चात् धीरे-धीरे खाई भरने लगी, मार्ग बनने लगे और खाई तालाबों का रूप लेने लगी। आज भी हाजी गुटकी कुरैशी मस्जिद, दीनदयाल उपाध्याय सामुदायिक केंद्र, मवाना अड्डा, इलियास का घर, मदरसा बैतलूम, बहरोड़ा रोड के अनेक निर्माण तालाबों में बने हुए बताये जाते हैं। उपरोक्त तालाब भी खाई के अवशेष हैं। इनमें दक्षिण के तालाब को मूसिया का तालाब और उत्तर वाले को माता वाला तालाब कहते हैं।

विक्रमी संवत् 1248 (सन 1191 ई.) में तराईन के मैदान में पृथ्वीराज के हाथों मोहम्मद गौरी की शर्मनाक पराजय हुई। परन्तु ठीक एक वर्ष पश्चात् सन् 1192 ई. में गौरी ने अपनी पराजय को विजय में बदल दिया और कुतबुद्दीन ऐबक को प्रतिनिधि शासक नियुक्त कर गौरी वापस चला गया। सन् 1192-93 में ऐबक ने मेरठ क्षेत्र पर हमला करके इसे दिल्ली में मिला लिया। और सन् 1206 ई. में गौरी की मृत्यु होने पर ऐबक ने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया और गुलाम वंश की नींव डाली जिसका शासन सन् 1290 ई. तक चला। इसी अवधि में ऐबक अलीगढ़ क्षेत्र की विजय के लिए अपनी सेना सहित किठौर से निकला (सच्चाई तो यह है कि उसने मेरठ के साथ ही उसके ग्रामीण क्षेत्र को भी रौंदा जिसमें किठौर भी था।) तो उसने किठौर के बाहर पड़ाव डाला (कुछ व्यक्ति इसका काल निर्धारण सन् 1193 ई. करते हैं) यह बंजर भूमि पड़ावों के लिए ही नियत थी। इसे आज भी पड़ाव कहा जाता है। उस समय यहां का जमींदार भाबंदु (या भाबदों) था। यहां से किठौर की किस्मत बदलती है। कौन था यह भाबंदु?

पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए जन्मेजय सर्पयज्ञ करना चाहता है परन्तु यहां के ब्राह्मण ऐसे हिंसक यज्ञ करने को मना कर देते हैं। तब वह बंगाल से ब्राह्मणों को बुलाता है। ब्राह्मणों द्वारा दक्षिणा लेने को मना करने पर राजा उन्हें जागीरें-जमींदारे देकर यहीं बसा लेता है। उन ब्राह्मणों में पाराशर भारद्वाज एवं भट्ट आदि कई गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनमें से ही एक पंडित महेश्वर भट्ट ने विक्रम सम्वत् 552 या सन् 495 ई. में वेट गांव बसाया था। इसी वंश के चतुरंग पण्डित ने राछौती बसाई थी (या राछौती में बसे)। इसी वंश में आगे चलकर पृथु हुए। पृथु के पुत्र थे भाबंदु। जन्मेजय से दक्षिणा ना लेने के कारण ये स्वयं को त्यागी ब्राह्मण कहते थे जबकि हिंसक सर्प यज्ञ कराने के कारण क्षेत्रीय ब्राह्मण इनको त्याज्य (त्यागा हुआ) या त्यागी कहते थे। इनका गोत्र भारद्वाज था।

भाबंदु किठौर के ज़मींदार तो थे लेकिन यहां के अन्य निवासी अत्यधिक असभ्य एवं पिछड़े हुए थे। इन्होंने ऐबक के साथ बदसलूकी की एवं उसे राशन नहीं दिया। वापसी में ऐबक ने यहां कत्ले आम कराया और काफी लोगों को पकड़ कर दिल्ली ले जाकर कैद कर दिया। इनमें भाबंदु सिंह भी था। भाबंदु सिंह आजाद होने की सोचने लगा। वह मुस्लिम संत एवं ऐबक के गुरू ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्यार काकी का जमाना था। किसी राज्यकर्मी के परामर्श पर भाबंदु ने काकी से मिलने की इच्छा ऐबक तक पहुंचा दी। काकी भाबंदु से प्रभावित हुए। इसी प्रकार भाबंदु ने ऐबक को भी प्रभावित कर लिया। ऐबक ने उसकी आजादी के लिए मुसलमान बनने की शर्त रख दी। अब आजाद होने के लिए भाबंदु के सामने धर्म परिवर्तन करने के अतिरिक्त अन्य कोई रास्ता नहीं बचा। अतः वह मुसलमान हो गया ऐबक ने खुश होकर उसे गढ़मुक्तेश्वर-परीक्षितगढ़ क्षेत्र के 126 गांव देकर राजा बना दिया। तब भाबंदु ने वापस आकर राजनीति के अनुसार अपने वंशियों (बंगाली ब्राह्मणों) एवं अन्यों को भी मुसलमान बना लिया। महेश्वर भट्ट के वंशीय होने के कारण ये स्वयं को महेसरे कहने लगे, जबकि यहां के मूल निवासी त्यागी मुस्लिम होने के पश्चात् भी त्यागी ही लिखते हैं। यद्यपि ये त्यागी भी कहीं-कहीं स्वयं को महेसरा कह देते हैं, परन्तु दोनों स्वयं को पृथक-पृथक ही मानते हैं। यह अन्तर बंगाली एवं हिंसक यज्ञ कराने के कारण है। यहां के ब्राह्मण सदैव इन्हें हेय दृष्टि से ही देखते रहे हैं। भाबंदु के कहने पर 82 गांव के भाबंदुवंशी तो मुसलमान हो गये लेकिन महलवाला सहित दो गांव नहीं हुए। इन लोगों में आज भी पूर्ववत भाईचारा है।

मुसलमान होने पर भाबंदों सिंह का नाम बहादुर अली एवं विवाह झज्जर के नवाब करम अली की बेटी सकीना बेगम से हुआ। उससे चार पुत्र हुए और चारों के वंश के चार गांव हुए। इनमें शतरूद्दीन या शहाबुद्दीन का ग्राम ललियाना व सोंदत, फखरूद्दीन का राधना व बहरोड़ा (भिरोड़ा) जलालुद्दीन का जलालुद्दीन पुर (किठौर का एक मोहल्ला) एवं किठौर तथा अलाउद्दीन वंशहीन रहा। इन गांवों में आज भी भाई चारा है।

इन तालाबों पर डाफे राजपूतों के देवस्थल एवं सतीमठ बने हैं जिनको पूजने राजस्थान के डाफे राजपूत कुछ समय पूर्व तक आते रहे हैं। सम्भवतः ये सती स्थल उन सैनिकों की पत्नियों के हैं जो या तो ऐबक के साथ रास्ते में मर गये थे या राजा भाबंदु की सेना में थे।

- किठौर का समस्त क्षेत्र भाबंदु वंशियों का हैं। इस विषय में सभी के मत भिन्न-भिन्न हैं परन्तु दो महत्वपूर्ण व्यक्तियों की मतवैभिन्यता को हम आपके सामने लाना चाहेंगे। एक नौफिल रूमानी युवा हैं, उच्च शिक्षित हैं, इतिहास की अच्छी समझ है और जैसा कि बताया गया है कि वे इतिहास में शोध (P.H.D) भी कर रहे हैं। उपरोक्त बातें उनके साक्षात्कार पर आधारित हैं। वे खाई और तालाबों वाली बात से भी सहमत हैं।

दूसरे व्यक्ति मुजफ्फर हसन भी भाबंदु के वंशज हैं, तथा जलालुद्दीन मोहल्ले में रहते हैं। अपने बुजुर्गों द्वारा बताया गया इतिहास उन के पास लिपिबद्ध रूप में प्राप्त है। मुजफ्फर हसन की उपरोक्त नौफिल रूमानी के कथन से निम्न भिन्नता है।

- मुजफ्फर हसन के अनुसार भाबंदु मंघोर (या मथौंर) रियासत (राजस्थान) के शासक राव चौंड़े राव के पुत्र एवं राजपूत थे, जबकि नोफिल रूमानी के अनुसार बंगाली ब्राह्मण एवं किठौर के जमींदार।

- भाबंदु अपने पिता की अन्तिम क्रिया के लिए गंगा जा रहे थे। किठौर में पड़ाव डाला। रसद मांगी, नहीं मिली। किठौरवासियों की अभद्रता पर वापसी में कत्लेआम किया। गौरी के दरबार में मुसलमान हुए। नौफिल इसे गलत बताते हैं।

- यह शब्द महेसरा नहीं बल्कि मयैसरा है। भाबंदु को गौरी ने अपने बायें हाथ का सरदार बनाया। दायें हाथ के सरदार को मेमना और बायें हाथ के सरदार को मयेसरा (अरबी-फारसी में) कहते थे। इसलिए उसके वंशज मयेसरा कहलाये जो अपभ्रंश होकर महेसरा बन गया। नौफिल रूमानी के अनुसार उनके

पूर्वज पहले से ही महेश्वर लिखते रहे हैं, उसी का अपभ्रंश है महेसरा।

शेष बातें दोनों की लगभग समान हैं। किठौर में कृष्ण गढ़ी के प्राचीन स्थान को आज भी कृष्ण गढ़ी, बालाए गढ़ी अथवा ऊपरी कोट कहा जाता है, जबकि भाबंदु की गढ़ी के स्थान को शीश महल। भाबंदु के एक वंशज मोहसिन खान ने बड़े तालाब के पास आबादी विकसित की इसलिए इसे मोहसिन तालाब कहने लगे जो अपभ्रंश होकर मूसिया तालाब बन गया।

दूसरे तालाब पर सतियां (माता) बनी होने के कारण माता वाला नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार दोनों तालाब कच्चे होते हुए भी अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं इतिहास के स्रोत हैं। इतने विशाल जल स्रोतों एवं ऐतिहासिक दृष्टि के तालाबों का नष्ट होना मानवता के लिए शुभ संकेत नहीं कहा जा सकता। महाभारतकालीन तालाब को फरिश्तों वाला (सम्भवतः कृष्ण के कारण) वाला तालाब कहा जाता है।

शाहजहांपुर का तालाब

मेरठ-गढ़ मुक्तेश्वर मार्ग पर मेरठ से लगभग 32 एवं किठौर से 2 किलोमीटर दूर है शाहजहांपुर। यह गांव पौधों की नर्सरी एवं फल-सब्जी मण्डी के लिए प्रसिद्ध है। मण्डी सड़क पर लगती है इसलिए 'जाम' यहां आम बात है। यह जाम एक घण्टे से लेकर 8-10 घण्टों का भी हो सकता है। मुस्लिम बाहुल्य होने के कारण सरकार अभी तक यहां अन्य शहरों की भांति मण्डी स्थल बनाने की हिम्मत नहीं दिखा पाई है। कई बार तो जाम में फंसकर रोगी अपनी जान तक गंवा बैठे हैं। इसी शाहजहांपुर में ठीक सड़क के किनारे है यह विशाल तालाब। शाहजहांपुर के निवासी बताते हैं कि लगभग 19-20 एकड़ का यह तालाब अतिक्रमण होते-होते लगभग आधा रह गया है।

वास्तुशिल्प की दृष्टि से अवलोकन करने पर आभास होता है कि शाहजहांपुर का निर्माण इस्लाम के शुभ प्रतीक अर्धचन्द्र के आकार पर किया गया था। यह तालाब चन्द्राकार बस्ती के चन्द्र बिन्दु या तारा के रूप में है। किसने बनाया यह तालाब? किसने की शाहजहांपुर की स्थापना?

भारतीय इतिहास शोध संस्थान के अध्यक्ष नौफिल रूमानी बताते हैं कि अफगानिस्तान का दिलाज़ाक गोत्री एक परिवार भारत आया। इस परिवार का एक वंशज दीवान अब्बास खां शाहजहां का दरबारी बना। शाहजहां एक बार शिकार खेलने आये तो अब्बास खां उसके साथ थे। शाहजहां को जंगल में एंक प्राकृतिक तालाब और सुन्दर स्थल पसन्द आया। कुछ दिन शिकार खेलने के पश्चात् काफिला दिल्ली वापस लौट गया। औरंगजेब और दारा शिकोह के सत्ता संघर्ष में अब्बास खां ने दारा शिकोह का साथ दिया। दुर्भाग्य या अपनी सज्जनता के कारण दारा शिकोह मारा गया और औरंगजेब ने दारा के सहयोगियों से खोज-खोज कर बदले लेने प्रारम्भ कर दिये। कुछ लोग मारे गये तो कुछ स्वयं को बचाने में सफल रहे। इनमें दीवान अब्बास खां भी थे। अब्बास खां ने सोच-विचार कर शाहजहां के शिकारी पड़ाव स्थल को वनों के बीच में सुरक्षित समझकर अपना निवास स्थल बनाने का निर्णय किया। उन्होंने उस स्थान पर पहुंचकर अपने लिए एक महल व अन्य साथियों के लिए मकान आदि बनवाये। इस बस्ती का नाम उन्होंने अपने प्रिय सम्राट के नाम पर शाहजहांपुर रखा। उन्होंने तालाब के किनारे जामा मस्जिद का निर्माण कराया जो आज भी है। चूंकि तालाब यहां पहले से ही विद्यमान था, इसलिए उन्होंने

कुशल वास्तुविद् की भांति (या किसी वास्तुविद के परामर्श से) बस्ती का निर्माण तालाब के दक्षिण में अर्द्धचन्द्राकार रूप में किया और तालाब को उसका तारा बिन्दु बनाया। इस शुभ संयोग के फलस्वरूप औरंगजेब ने अब्बास खां को माफ कर दिया और अपने साथ मिला लिया। अब्बास खां के दौलत खां नामक पुत्र हुए जिनके चार पुत्र पैदा हुए। शाहजहांपुर में आज भी चार महलों के अवशेष प्राप्त होते हैं। एक महल के मुख्य द्वार की छत के नीचे रक्खे हुए गंदगी (मल) के टोकरे न जाने किसको चिढ़ाते हैं?

बाद में अब्बास खां औरंगजेब के साथ किसी युद्ध में गये तो पश्चिमी बंगाल के बालाघाट जिले में किसी नदी को पार करते हुए काल कवलित हो गये। उनके शव को वहां से लाकर बेरियों वाले बाग में दफन किया गया। इस तालाब और बस्ती के वास्तु सम्मत होने के कारण उनका वंश आज भी प्रगति की राह पर है।

नंगली तीर्थ (ताल)

नंगली तीर्थ में दो जल स्थान अदभुत एवं महत्वपूर्ण हैं। प्रथम अमृत ताल एवं द्वितीय अमृत स्रोत नल (हैण्डपम्प)। यद्यपि इतिहासकार धार्मिक चमत्कारों के प्रति तटस्थ होता है अथवा उन्हें मानता ही नहीं लेकिन इस धार्मिक देश में जहां जल को देवता के रूप में पूजा जाता है वहां जल स्थानों को उपेक्षित दृष्टि से देखकर आगे बढ़ जाना मूर्खता ही कहा जायेगा।

मेरठ-मुजफ्फरनगर मार्ग पर सकौती रेलवे फाटक के समीप से एक पक्का मार्ग जाता है नंगली तीर्थ को। यहां मुख्य मार्ग पर ही नंगली तीर्थ को प्रदर्शित करने वाला एक भव्य गेट बना है। यहां से लगभग 7-8 किलोमीटर है नंगली ग्राम एवं नंगली तीर्थ। यहीं पर है तालाब एवं नल। नंगली तीर्थ-तालाब एवं नल तीनों की खोज की कथा अत्यधिक चमत्कारी, सन्तों-भक्ति एवं भगवान में विश्वास पैदा करने वाली है। सन् 1936 ई. में एक अदभुत तेज युक्त फकीर (सन्त श्री परमहंस दयाल दादा गुरूदेव स्वामी अद्वैतानन्द जी) घूमते-घूमते नंगली आ गये और उन्होंने उसे अपनी साधना स्थली बनाया। यहां के एक सीधे सच्चे कृषक भक्त गैंदा लाल उनके सेवक बन गये। स्वामी जी गैंदा लाल के घेर की झोंपड़ी में ही रहने लगे। दोनों में राधा-कृष्ण जैसा पवित्र प्रेम हो गया। धीरे-धीरे सन्त जी के पास श्रद्धालु एवं दुखी लोग आने लगे। स्वामी जी जटिल रोगियों को गांव के एक छोटे से जल युक्त गड्ढे (पोखर) का जल प्रयोग कराते। रोगी रोग के साथ-साथ अनेक मानसिक संतापों से भी मुक्त हो जाता। एक दिन भक्त गेंदा लाल ने शंका की कि महाराज आपने निवास के लिए यह नंगली ग्राम ही क्यों चुना एवं इस पोखर का क्या रहस्य है? तो काफी आनाकानी एवं गैंदा लाल की अनुनय-विनय के पश्चात् स्वामी जी ने बताया कि गैंदा लाल यह तो तेरा सौभाग्य है कि तूने इस पवित्र स्थल पर जन्म लिया। मैं भी वर्षों की खोज के पश्चात् यहां पहुंच पाया हूं। यह स्थान तो भगवान राम से भी प्राचीन है। सप्त ऋषियों ने यहीं पर तपस्या की थी। भगवान दत्तात्रेय ने साधनारत् रहते हुए मछली को अपना सोलहवां गुरू यहीं इसी पोखर में तब बनाया था जब मछली एक शिकारी के कांटे में लालच के वशीभूत होकर फंस कर अपने प्राण गंवा बैठी थी। पहले यह बड़ा एवं प्राकृतिक तालाब था। ऋषि-मुनि यहीं पर स्नान करते थे। उनके चरणोदक एवं तपस्या का प्रभाव है कि वे संताप मुक्त हो गए। भगवान दत्तात्रेय ने अपनी लंगोटी एवं कमण्डल का परित्याग भी इसी वन में किया था। उनके नग्न होने के कारण ही इस स्थान का नाम नंग वाला-नंगे

वाली और फिर नंगली हो गया। महाभारत काल में भी इसका प्रयोग तीर्थ एवं तपस्थली के रूप में होता रहा। फिर यह महाकाल की कुदृष्टि का शिकार बन कर अदृश्य हो गया। अब यह पुनः तीर्थ का रूप धारण करेगा। यहां थोड़ी-थोड़ी दूर पर चमत्कार बिखरे पड़े हैं, जो समयानुसार प्रकट होंगे। तेरा मेरा मिलन भी यहां उसी काल के संयोग के कारण हुआ है।

स्वामी जी के अनुयायियों एवं शिष्यों ने सन् 1975 में इस पोखर के स्थान पर लगभग 75x50 मीटर का एक पक्का तालाब बना दिया। नंगली तीर्थ में आने वाले श्रृद्धालु एवं भक्त जन इसमें स्नान करके स्वयं को धन्य मानते हैं।

ऐसा ही एक दूसरा विस्मयकारी जल स्रोत एक नल अथवा हैण्डपम्प है। इसे 'अमृत स्रोत' कहा जाता है। इसका जल गंगाजल की भांति वर्षों दूषित नहीं होता। इसके विषय में स्वामी शारदयानन्द जी सहित सभी साधु-ग्रामीण एवं भक्तजन बताते हैं कि 1936 में जब परम गुरू अद्वैतानन्द जी यहां भक्त गेंदा लाल के यहां ठहरे तो घेर में पानी का अभाव था। पानी की पूर्ति के लिए यहां नल लगाया जाने लगा। परन्तु पहले तो पानी निकला ही नहीं और अथक परिश्रम के बाद निकला भी तो वह अशुद्ध एवं पीने योग्य नहीं था। गेंदा लाल के एवं भक्तों की प्रार्थना पर गुरू महाराज ने यहां अपने चरण स्पर्श करा दिये तो शीघ्र और सरलता से ही स्वच्छ जल निकल आया। तब श्री महाराज ने कहा कि इस जल को साधारण मत समझना। इसमें सभी 68 तीर्थों का जल है। यह पूजनीय है। तब से आज तक यह निर्बाध गति से चल रहा है। भक्त जन इस जल को बोतलों-बर्तनों में भरकर घरों को ले जाते। वर्षों तक खराब न होकर यह स्वामी जी की वाणी की सत्यता का अनुमोदन करता है।

गंगोल तीर्थ तालाब

मेरठ-दिल्ली मार्ग पर मेरठ के समीपस्थ परतापुर से एक मार्ग कताई मिल व पराग दुग्ध फैक्ट्री के समीप से होता हुआ आगे खरखौदा तक चला गया है। इसी मार्ग पर खरखौदा से लगभग 10 किलोमीटर एवं परतापुर से 5 किलोमीटर दूर स्थित है गंगोल तीर्थ अथवा विश्वामित्र का आश्रम।

रामायण के अनुसार दण्डकारण्य में विश्वामित्र-भारद्वाज आदि महर्षियों के आश्रम-तपस्थली एवं वैज्ञानिक प्रयोगशालाएं थी। महत्वपूर्ण स्थल होने के कारण रावण के गुप्तचर एवं सेना यहां विशेष निगरानी रखते थे। इस प्रकार मेरठ से लेकर हापुड़-गाजियाबाद-शाहदरा-बागपत आदि को समाहित करता हुआ यह दण्डकारण्य अथवा जनस्थान यमुना से लेकर गंगा तक विस्तृत भू-भाग में फैला हुआ था। इस जनस्थान में ऋषियों एवं नवीन खोजों की निगरानी के लिए खर दूषण-ताड़का-सुबाहु आदि महाभट्ट योद्धा निवास करते थे। कहा जाता है कि खर-दूषण का निवास होने के कारण ही समीपस्थ गांव का नाम खरखौदा प्रसिद्ध हुआ। गंगोल तीर्थ से लगभग दो किलोमीटर पर आज 'काली वनी' के नाम से प्रसिद्ध वह स्थल है जहां भगवान राम ने ताड़का का वध किया था। विश्वामित्र ऋषि अपने यज्ञ की रक्षार्थ दशरथ से राम-लक्ष्मण को मांग कर यहीं पर लाये थे। राम ने अपने तीर के द्वारा भू-गर्भ से जल का स्रोत (किंवदन्तियों में गंगा) प्रकट किया। इसलिए इस तीर्थ एवं गांव का नाम गंगोल (गंगा व जल - गंगोल) प्रसिद्ध हुआ। दीर्घ समयावधि के कारण इतिहास ने तो इसे लगभग लुप्त सा कर दिया लेकिन वेदों की भांति श्रुति-स्मृति परम्परा में यह ताजा

रहा। यहां पर एक छोटा एवं कच्चा जोहड़ सा था। दूर-दूर तक पानी के अभाव में भी यह सूखता नहीं था। ग्वालियों की एक गाय प्रतिदिन इसमें पानी पीकर एवं स्नान करके जाती थी। ग्वालियों ने चकित होकर उसका पीछा किया तो यह जोहड़ दृष्टि गोचर हुआ। स्नान आदि किया तो उन्हें ताजगी का अनुभव हुआ। तब से सभी लोग यहां आने लगे। एक दिन एक अति वृद्ध महात्मा यहां पर आये और लोगों को बताया कि यह विश्वामित्र ऋषि का आश्रम और भगवान के बाण से बना तीर्थ है। इसकी प्रसिद्धि के साथ-साथ विकास भी होने लगा। यहां पर एक छोटी सी नदी बहने के चिन्ह एवं चर्चे हैं। उसे सगरा या सागरा कहा जाता था। यह भी कहा जाता है कि यह जोहड़ विश्वामित्र के यज्ञ कुण्ड का अवशेष है। खुदाई में यहां पर आज भी राख एवं बालू रेत निकलती है।

पर्यटन विभाग ने इस तालाब को विस्तृत एवं पक्का बना दिया है। यहां एक धर्मशाला का निर्माण भी कराया है। इसके अतिरिक्त भक्तों ने भी यहां मन्दिरों आदि के निर्माण कराये हैं। लगभग 25 पीढ़ी से यहां की व्यवस्था ग्राम इटाड़ा का गोसांई परिवार कर रहा है। वर्तमान में इसके महन्त श्री महेश गोसांई हैं। पूर्व में विश्वामित्र मंदिर तीर्थ के नाम लगभग 500 बीघा कृषि भूमि थी जो घटते-घटते लगभग 80-90 बीघा रह गई परन्तु मौके पर आश्रम सहित सम्भवतः 20 बीघा ही है।

पिण्डदान हेतु इसे दूसरा गया तीर्थ माना जाता है। इसीलिए पितृ उद्धार हेतु यहां लोग दूर-दूर से पिण्ड दान करने आते हैं। यहां पर भगवान राम, लक्ष्मण एवं शिव के मन्दिर भक्तों की आस्था के केंद्र हैं। विश्वामित्र का नाम आज भी भौतिकवाद से अध्यात्म की ओर जाने की प्रेरणा देता है।

सेठों का तालाब

मेरठ से लगभग दस किलोमीटर मेरठ-हापुड़ मार्ग पर एक गांव है 'फफूंडा'। गांव में प्रवेश के पहले ही एक शिवमन्दिर एवं तालाब है। शिव मन्दिर के प्रांगण में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र एवं ग्राम पंचायत का कार्यालय है। तालाब के विषय में जानने से पूर्व आपको गांव की स्थापना का संक्षिप्त इतिहास बताना आवश्यक है। लगभग 500 वर्ष पूर्व मिस्र से एक कट्टर मुसलमान धर्मप्रचार के लिए भारत आया। धर्म प्रचार करते-करते वह भारत की संस्कृति में ही प्रवाहित होता चला गया। कट्टरपन दूर एवं साधुवाद समीप होता चला गया। घूमता-घूमता वह इस दण्डकारण्य वन (देखें गंगोल तीर्थ) के स्थान में प्रवेश कर गया। यहां आकर भगवान की महिमा/कृपा अथवा इस प्राचीन तपस्थली का उस पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह यहीं का होकर रह गया। यहां उसने अपनी साधना स्थली बनाई। लोगों द्वारा नाम पूछने पर उसने सूफियाना अंदाज में कहा कि मेरा क्या नाम हो सकता है मैं तो 'रूक्न' हूं। रूक्न की आध्यात्मिक विवेचना तो बहुत लम्बी हो जायेगी लेकिन संक्षेप में फारसी में रूक्न का अर्थ किसी छन्द का गण या लघु सूत्र होता है। इसके बिना किसी गज़ल-कविता-गीत आदि का शास्त्रीय निर्माण असम्भव होता है अर्थात पूर्ण छन्द (ईश्वर) का एक अंश रूक्न। सीधे-सादे लोग नासमझी के कारण उसको रूक्नुद्दीन मिसरी (मिश्र का रहने वाला-मिश्री या मिसरी) कहने लगे। जहां रूक्नुद्दीन ने अपनी साधना स्थली बनाई वहां खोदने पर एक छोटा सा यज्ञ कुण्ड निकल आया तो लोगों द्वारा उसके विषय में पूछने पर कहा कि यह फकीरों का कुण्डा (हवन कुण्ड) है। इसी आधार पर इसका नाम फंफूडा हो गया। आगे जब रूक्नुद्दीन ने यहां ग्राम की स्थापना की तो यह ग्राम रूक्नुद्दीन मिसरी का फंफूडा अथवा रूक्नुद्दीन मिसरी उर्फ फंफूडा हो गया जो आज तक चला आ रहा है। चूंकि

रूक्नुद्दीन की आध्यात्मिक शक्ति अति प्रबल हो गई थी इसलिए इस क्षेत्र में आते ही उसे इसके तपोभूमि होने का ज्ञान हो गया। इसीलिए उसने इसे अपनी तपस्थली बनाया। जहां वह फकीरों का कुण्डा (यज्ञकुण्ड) निकला था वहां रूक्नु ने एक छोटा सा तालाब बना कर सुरक्षित कर दिया। गांव से दक्षिण पूर्व में आज भी रूक्नुद्दीन पीर की मज़ार पर यह कुन्डा सुरक्षित है। वर्ष में यहां पर एक बार उर्स भरता है।

अब हम तालाब की चर्चा करते हैं। इसी गांव में लाला बनारसी दास एवं लाला परमात्माशरण का जमींदार परिवार रहता था। इनका 22 गांव का जमींदारा था। वैश्य होने के कारण यह लोग लाला जी के नाम से पुकारे जाते थे। अपने लगभग एक सौ बीघा (लगभग 16-17 एकड़) के विशाल बाग में अधिकांशतया इनका आवागमन लगा रहता था। जब वह एक निश्चित स्थान पर बैठते तो अत्यधिक शान्ति एवं आध्यात्मिकता का अनुभव करते। धीरे-धीरे उस स्थान से विशेष लगाव होने पर वह वहां अधिकांश समय व्यतीत करने लगे। बैठे-बैठे एक दिन सुशुप्तावस्था में उन्हें आवाज आई कि 'यह भगवान शिव की प्राचीन पूज्य स्थली है, इसका उद्धार करो'। लाला परमात्माशरण के इन पूर्वज द्वारा शिव मन्दिर की खुदाई के बीच शिवलिंग प्रकट हो गया। मन्दिर बनाकर शिवलिंग की स्थापना की गई। यह शिवलिंग अन्य शिवलिंगों से भिन्न है। कहते हैं कि जलाभिषेक होते-होते यह पतला हो गया। मन्दिर के समीप ही लगभग 2 एकड़ में 12-13 फीट गहरा तालाब बनाया गया। तालाब के दक्षिणी भाग में ग्यारह सीढ़ियां बनी थीं जो अब पूर्णतया टूट चुकी हैं। पूर्वी भाग में एक ढलानदार घाट बना है जो पशुओं के पानी पीने आदि के काम में आता था। तालाब के उत्तर में एक झरना (दूसरा ढाल) बना है जिसके द्वारा पानी तालाब में आता था। पहले इसकी भराई राजवाहा फिर बिजली के राजवाहे से की जाती थी, अब तो यह सूख गया है।

जमींदारी उन्मूलन के कुछ वर्षों पश्चात् वैश्य परिवार अपने इस बाग एवं शेष लगभग चालीस बीघा ज़मीन को विक्रय करके मेरठ में आ बसा। अब इस भूमि के साथ ही क्रयकर्ता अर्जुन गुर्जर का परिवार ही तालाब का उपयोग कृषि भूमि के रूप में कर रहा है। अभिलेखों में आज भी तालाब सहित कुछ भूमि मन्दिर-तालाब के नाम दर्ज है। मन्दिर तालाब का निर्माण काल सन् 1700 ई. के समीप है।

यह निश्चित रूप से तपोभूमि दण्डकारण्य का ही एक भाग है। विश्वामित्र ऋषि आश्रम एवं खरखौदा यहां से केवल दो किलोमीटर एवं ताड़का वधस्थल 'कालीवनी' केवल एक किलोमीटर है। ग्रामीणों के कथनानुसार यह गांव फकीरों का अर्थात् साधुओं का था। इससे प्रमाणित होता है कि पूर्व में यहां साधु-सन्त निवास करते थे।

अब यह लालाओं का मन्दिर-तालाब के नाम से प्रसिद्ध एवं एकदम सड़क के समीप गांव के प्रवेश द्वारा पर स्थित है।

प्राकृतिक झील

मेरठ-दिल्ली मार्ग पर मोदीनगर के समीप है मोहिउद्दीनपुर। यहां पर उत्तर प्रदेश सहकारी शुगर मिल भी है। मोहिउद्दीनपुर से पूर्व को एक सम्पर्क मार्ग गून-गेझा को गया है। मोहिउद्दीनपुर से इसी मार्ग पर लगभग चार किलोमीटर पर सड़क के दायीं ओर एक शिव मन्दिर और ढिंडाला गांव का ऊंचा द्वार बना है। यहां से एक किलोमीटर उत्तर में है गांव ढिंडाला और ढिंडाला के पूर्व

में है यह विशाल झील। झील का अधिकांश भाग पानी से परिपूर्ण है, कुछ उथले भाग में घास-फूस आदि खड़ी है। यह लगभग 40 बीघा में है। इसके समीप ही एक दूसरी उथली झील है जिसे डहर कहते हैं। यह भी लगभग पांच एकड़ में है।

जाड़ों में यहां पर विभिन्न प्रजातियों के प्रवासी पक्षियों को देखने एवं उनका शिकार करने दूर-दूर से दर्शक एवं शिकारी आते हैं क्योंकि यहाँ उनके लिए भरपूर भोजन एवं मनोनुकूल वातावरण है। उस समय झील की शोभा भव्य हो उठती है। जहां तक सम्भव हो ग्रामीण शिकार नहीं करने देते परन्तु शिकारी फिर भी देर-सवेर चोरी से शिकार कर ही लेते हैं। मेहमानों को मारना कौन से मानव शास्त्र में लिखा है?

झील को अत्यन्त प्राचीन बताया जाता है। गांव के ही रामे पण्डित के अनुसार जन्मेजय के सर्पयज्ञ में आहुति न देने वाले ब्राह्मणों को राजाज्ञा से पलायन करके अनेक दूसरे राज्यों में जाने के लिए विवश होना पड़ा। उनमें से कुछ ब्राह्मण राजस्थान जा बसे। लगभग छः सौ वर्ष पूर्व उन्हीं ब्राह्मण वंशीय परिवारों में कुछ पुनः इधर आये तो यहां वनखण्ड में इस सुन्दर और शुद्ध पानी से परिपूर्ण झील को देख कर यहीं रहने लगे। वंश वृद्धि हुई, कुछ अन्य लोग भी आ बसे, धीरे-धीरे गांव बस गया। ब्राह्मण बाहुल्य वाले इस गांव में जमींदारा भी ब्राह्मणों का था। चकबन्दी के पश्चात् ब्राह्मणों का वर्चस्व समाप्त हो गया।

करनावल का तालाब

सरूरपुर ब्लॉक के अन्तर्गत सरधना-बिनौली मार्ग पर उत्तर-पूर्व दिशा में लगभग तीस किलोमीटर दूर करनावल कस्बे में मौजूद है महाभारत कालीन एक ऐसा तालाब जो पीलिया जैसे असाध्य रोग को ठीक करने के लिए जाना जाता है। गौरतलब है कि करनावल को मुख्य सड़क से नौ मार्ग जोड़ते हैं। किवंदंति है कि इस कस्बे का नाम सूर्य-पुत्र कर्ण के नाम पर ही करनावल पड़ा था।

बुजुर्गों के अनुसार यहां मौजूद इस विशाल तालाब को तपस्या के महाबली कर्ण द्वारा स्वयं ही खोदा गया था। इस तालाब में आज भी प्राकृतिक रूप से जल संचित होता रहता है। मान्यता है कि इसके पानी में नहाने से पीलिया जैसी बीमारी का निदान हो जाता है। इसमें स्नान करने की प्राचीन काल से ही मान्यता रही है। आज भी दूर-दराज से लोग इसमें स्नान करने के लिए आते हैं। ऐतिहासिक महत्व रखने वाले इस तालाब के इतिहास पर नज़र डालने पर पता चलता है कि यह तालाब पाण्डव काल से ही रोग-मुक्ति के लिए जाना जाता रहा है। प्राचीन मान्यता रखने वाले इस तालाब की वर्तमान में दशा अत्यधिक चिन्तनीय हो गई है। सभ्य समाज की बेरुखी के चलते यह तालाब दिन-प्रतिदिन सिमटता जा रहा है।

मुजफ्फरनगर जनपद के तालाब

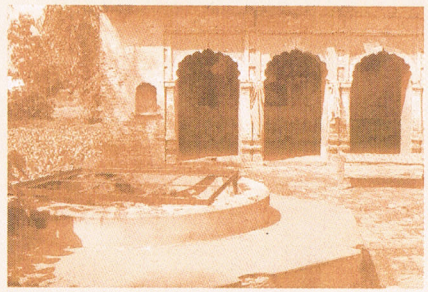

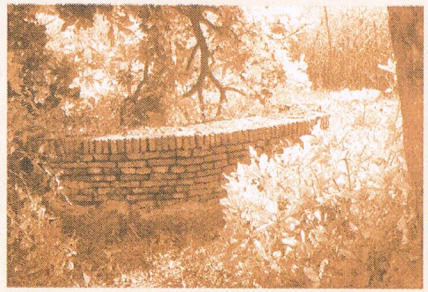

मोती झील

लगभग एक एकड़ में फैला काला प्रदूषित पानी और नाम मोती झील! मुजफ्फरनगर से लगभग 16 किलोमीटर दूर मुजफ्फरनगर-शामली मार्ग पर काली नदी के पुल से लगभग 200-250 मीटर की दूरी पर दूसरा पुल पड़ता है। इस पुल के ठीक नीचे है मोती झील। किसी राजा-महाराजा अथवा बादशाह ने नहीं बल्कि प्रकृति ने स्वयं अपने हाथों से बनाया है इस झील को। यह झील कब और कैसे बनी इसका भी किसी को ज्ञान नहीं। किनारों से बीच को यह क्रमशः गहरी होती चली गई है। बीच में जो वस्तु या जीव-जन्तु चला गया वह वापस नहीं आया। कहा जाता है कि यह पर्दाफाश है अर्थात् इसकी गहराई अनन्त है अथवा इसके तल में भूमि नहीं है। अब इसके बीच में लोहे का जाल डाल दिया गया है ताकि कोई डूबे नहीं।

भौगोलिक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि किसी समय यह अत्यधिक विस्तृत रही होगी। इसके समीप की सैंकड़ों बीघा भूमि आज भी नीची है जो कि अधिक वर्षा में आज भी लगभग पूर्व जैसी स्थितियों में आकर वर्तमान झील के प्राचीन रूप का दर्शन सा करा देती है। भौगोलिक दृष्टि से यह भी सम्भावित है कि किसी समय काली नदी ही यहां झील का रूप धारण कर लेने के पश्चात् आगे को चलती हो। बाद में काली नदी को किनारों में बांध दिया गया हो और यह सिकुड़ कर अपने वर्तमान रूप में आ गई हो। आज भी जब काली नदी में बाढ़ आती है तो झील सहित यह समस्त जंगल जलमग्न हो जाता है। यह बताने वाले आज भी मिल जाते हैं कि यहां पीछे से आकर इसमें से खाले (छोटे-बड़े प्राकृतिक नाले) निकलते थे जो आगे जाकर काली नदी में ही गिरते थे। लेकिन झील के ऊपर से बुपैड़ा ग्राम तक (लगभग 10 किलोमीटर) मिलने वाले खादर ऊंचाई व गहराई आदि चिन्हों से प्रतीत होता है कि यहां कभी कोई बड़ी बरसाती नदी बहती थी जो किसी कारणवश सूख गई। काली नदी उसके बहुत बाद में अस्तिव में आई।

काली नदी के पूर्वी तट के पास बहुत ऊंचे-ऊंचे रेतीले टीले थे जिन्हें काला पहाड़ कहा जाता था। उनके बीच से ही टेढ़े-मेढ़े खाले भी बहते थे। इन्हीं के नाम पर मुजफ्फरनगर की एक बस्ती का नाम ही खालापार (काला पहाड़ या खाला के पार - खालापार जैसे नदीपार) प्रसिद्ध हो गया।

किसी समय इसका पानी मोती के समान स्वच्छ था। अतः इसका नाम भी मोती झील पड़ गया। कहा जाता है कि कभी यह वन के हाथियों का स्नानागार था। बाद में शाही हाथियों को भी यहां स्नानार्थ लाया जाता रहा था। दौराला के समीप धन्जु गांव में भी एक मोती झील के अवशेष प्राप्त होते हैं। सम्भव है कि यह कोई मोती झील नामक नदी हो जो कहीं ऊपर से आकर मुजफ्फरनगर के पास से बहती हुई धन्जु तक आती हो।

मुजफ़्फरनगर शहर में स्थित
अकल्पनीय मोती झील (परदा फास)

कुटी तालाब

तालाबों के निर्माण में धार्मिक आस्थाओं एवं कर्म काण्ड का भी बहुत योगदान रहा है। ऐसा ही एक तालाब ग्राम बावरी में है। तहसील शामली एवं मुजफ्फरनगर मार्ग पर शामली से लगभग दस किलोमीटर दूरी पर लगभग दो किलोमीटर के सम्पर्क मार्ग से जुड़ा है बावरी गांव और इस गांव में प्रवेश करते ही है यह तालाब। कुटी के नाम से प्रसिद्ध यह स्थान अभिलेखों में देव भूमि के नाम से अंकित है। तालाब बहुत बड़ा नहीं है लेकिन छोटा भी नहीं है और यह दो भागों में विभक्त है। बीच में कुटी (मन्दिर एवं आवास) आदि बनी है। यहीं एक अत्यधिक गहरा कुआं भी है।

पूर्व में बावरी वैश्य बाहुल्य वाला ग्राम था। इसमें बिलोच मुसलमान भी रहते थे। लगभग सभी वैश्य अच्छे धनवान थे। इनके पुराने जीर्ण-शीर्ण घर (गढ़ी) आज भी अपनी भव्यता की कहानी का स्वयं बखान करते हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्व मंत्री सोमांश प्रकाश भी इसी गांव के थे। उनकी गढ़ी आज भी किसी किले से कम नहीं दिखती। बावरी में एक कालू (कालीचरण) वैश्य का परिवार रहता है जो पंजाबियों के नाम से प्रसिद्ध है। इनके पूर्वज लगभग 200 वर्ष पूर्व पंजाब में सरकारी सेवाओं में अच्छे एवं लाभकारी पदों पर आसीन थे। इनमें एक बैरिस्टर भी थे। पंजाब में नौकरी करने के कारण इस परिवार को पंजाबी बनिये (वैश्य) कहा जाता था। उस समय तहसील शामली हुआ करती थी एवं पंजाबी वैश्य इसके सबसे बड़े रईस थे जबकि जमींदार सोमांश प्रकाश के पूर्वज थे। इन बैरिस्टर साहब ने सन् 1800 ई. में बनवाया था यह तालाब।

हिन्दुओं में कुछ सवर्ण माने जाने वाली एवं उनमें भी विशेषतः ब्राह्मण-त्यागी एवं वैश्यों में किसी की मौत के पश्चात् एकादशाह करने की रीति है जो आज भी चली आ रही है। यह मृत्यु के दिन से दसवें अथवा ग्यारहवें दिन होता है। इस दिन गांव से बाहर जाकर मृतात्मा की शांति एवं सद्गति हेतु पिण्ड एवं जलदान आदि किया जाता है। लगभग चार घण्टे तक चलने वाली यह प्रक्रिया किसी देवस्थान-जल के किनारे या पीपल के नीचे की जाती है। परिजन वहीं पर स्नान करते हैं। उस समय महिलाएं भी वहीं स्नान करती थीं। मुस्लिम शासन के चलते बावरी में ऐसे स्थान का अभाव था जो अंग्रेजी शासन में भी रहा। लेकिन अंग्रेजी शासन इतना अनुदारवादी, साम्प्रदायिक एवं कट्टर नहीं था। इसलिए उस काल में ऐसे स्थान का निर्माण सरल था। अतः पंजाबी वैश्यों ने इस भूमि पर ऐसे कार्यों के लिए तालाब आदि का निर्माण कराया। इस कच्चे तालाब में एक ओर पुरुषों के स्नानार्थ सीढ़ियां (घाट) बनी थीं तो स्त्रियों के लिए दीवार बना कर पृथक हौज का निर्माण किया गया था जो आज भी है। वस्त्र आदि बदलने के लिए एक सुन्दर कमरा व बरामदा आदि भी बनाया गया था जो अब खण्डहर में परिवर्तित हो गया है। अब इस तालाब में मछली पालन किया जा रहा है।

इसी गांव के साथ शामली तहसील परिवर्तन की गाथा भी संलग्न है। बताते हैं कि आजादी के लगभग पचास वर्ष पूर्व तक शामली तहसील थी। बावरी के बिलोचों ने तहसील लूट ली। अंग्रेजी प्रशासन ने बिलोचों को फांसी देने के साथ ही शामली से तहसील हटा कर कैराना में कर दी। मायावती ने तब से अब अर्थात् एक सौ वर्ष पश्चात् अपने मुख्यमंत्रित्व काल में शामली को पुनः तहसील का दर्जा दिया है।

हनुमान टीला (तालाब)

तहसील शामली स्थित हनुमान टीला केवल मुजफ्फरनगर ही नहीं बल्कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश का विशेष प्रसिद्ध स्थल है। महाभारत काल में हस्तिनापुर-कुरुक्षेत्र के मार्ग में पड़ता था यह स्थान। यहीं से इसके इतिहास की जानकारी मिलती है। युद्ध घोष हो चुका था। कुरुक्षेत्र में सेनाएं-राजा-महारथी आ रहे थे। शिविर लग चुके थे। केवल तीर चलने शेष थे। युद्ध-राजनीति-सन्धि-विग्रह एवं धर्म-अधर्म की धुरी भगवान कृष्ण, विदुर आदि नीतिज्ञों से परामर्श एवं मेल-मिलाप करने के पश्चात् इसी मार्ग से कुरुक्षेत्र जा रहे थे। एक निर्जन स्थान पर उन्होंने बरने (एक प्रकार का वृक्ष) के वृक्षों की शीतल छाया, पानी के लिए कुआं एवं विशाल तालाब देख कर कुछ विश्राम एवं चिन्तन की दृष्टि से पड़ाव किया। उसी चिन्तन में उन्होंने कर्ण-अर्जुन का युद्ध भी देखा। कर्ण की वीरता देख कर उन्हें अर्जुन की चिन्ता हुई तो उन्होंने हनुमान को प्रकट करके आदेश दिया कि 'अर्जुन के रथ पर तीनों लोकों का भार लेकर तो मैं बैठूंगा, रथ की कुछ हानि नहीं होगी, लेकिन रथ का ऊपरी भाग असुरक्षित रहेगा। इसलिए उसकी रक्षा के लिए ध्वजा पर तुम विराजमान रहना। हनुमान ने आज्ञा शिरोधार्य की एवं भगवान द्वारा यहां प्रकट कराने के कारण यहीं स्थायी निवास का निश्चय किया। यही वह स्थान है जो वर्तमान में हनुमान टीले के नाम से प्रसिद्ध होकर हनुमान जी के साक्षात् दर्शनों का अनुभव एवं भक्तों की मनोकामनाएं पूर्ण करा रहा है। कुछ सन्त महात्मा साधनान्तर्गत अनुभव के आधार पर बताते हैं कि बनवास के समय भीम को हनुमान जी के दर्शन यहीं हुए थे एवं भीम से अपनी पूंछ हटाने को कह कर उसका अभिमानमर्दन किया था। भगवान कृष्ण (श्याम) की विश्रामस्थली होने के कारण ही इसका नाम श्याम वाली-श्यामा-एवं अपभ्रंश होकर शामली विख्यात हुआ। कालान्तर में यह वनखण्ड हो गया। मुगलकाल में यह जहांगीर के हकीम मुकर्रबशाह की जागीर में था। मराठों ने हिन्दु पातशाही के स्वप्न को साकार करने के लिए कठिन श्रम-प्रयत्न एवं युद्ध किये परन्तु देशद्रोही एवं अदूरदर्शी राजाओं के असहयोग के कारण उनकी योजना सफल नहीं हो सकी। उस समय दिल्ली को स्वतंत्र कराने हेतु इस ऊबड़-खाबड़ वनखण्ड का उपयोग छावनी के रूप में किया। उन्होंने शामली के चारों ओर चार शिव मन्दिरों की स्थापना कर सुरंगों द्वारा उन्हें आपस में जोड़ा। हनुमान टीले पर स्थापित श्री मनकामेश्वर मन्दिर उनमें से एक है।

स्वतंत्रता संग्राम में इस क्षेत्र का उपयोग स्वतंत्रता सेनानियों ने भी किया। अंग्रेजी काल में यहां के नवाब एवं जमींदार तथा अंग्रेजों के अति विश्वास पात्र असलम गर्दी के अत्याचारों से तंग आकर कुछ जोशीले व्यक्तियों ने पुरानी तहसील लूट ली तो अंग्रेजों ने कुपित होकर अनेक लोगों को तो फांसी दी और तहसील को कैराना स्थानान्तरित कर दिया जो सुश्री मायावती के पूर्व शासन में पुनः तहसील बनी है।

यहां पर द्वापर युग का ही विशाल तालाब, ऊंचे-नीचे टीले, झाड़-झंखाड़युक्त वनखण्ड एवं एक बहुत ऊंचा टीला था। यहां पर दिन में आना भी कठिन एवं भययुक्त था। 1950 में एक सिद्ध सन्त बाबा धर्मदास ने यहां खड़ी तपस्या के मध्य बताया था कि यह स्थान चमत्कारों से परिपूर्ण हनुमान जी की सिद्ध पीठ है। यह स्थान वनखण्ड होते हुए भी प्रसिद्ध रहा है।

14 सितम्बर 1966 को कुछ उत्साही युवकों ने यहां के जीर्णोद्धार का संकल्प लिया। 4 मई 1967 को जीर्णोद्धार प्रारम्भ किया गया। 14 मार्च 1969 को यहां शंकराचार्यों सहित

अनेक स्वनाम धन्य सन्त पधारे। ज्योतिष पीठाधीश्वर जगदगुरू शंकराचार्य श्री कृष्णाबोधाश्रम जी के आदेश पर श्री भूमानन्द महाराज ने मन्त्रों एवं तप के प्रभाव से हनुमान जी को सुशुप्ति से जागृत किया और चमत्कार होने लगे। अब इस टीले ने भव्य तीर्थ का रूप धारण कर लिया। बजरंगबली की विशाल प्रतिमा के बराबर में एक छोटी प्रतिमा लगी है जो कि स्वयं भगवान कृष्ण द्वारा स्थापित है। यहां खुदाई में भैरों भगवान की मूर्ति भी प्राप्त हुई जो यहीं पर स्थापित कर दी गई। आज यहां से अनेक जनोपयोगी योजनाएं संचालित हो रही हैं। यहां की संचालन समिति के अध्यक्ष श्री ओमकार द्विवेदी वृद्धावस्था में भी सत्त् कार्यशील एवं भविष्य में योजनाओं को विस्तार देने के लिए कृतसंकल्प हैं।

प्राचीन तालाब का भराव करके अनेक निर्माण करा दिये गये हैं परन्तु मध्य में तालाब का नवीनीकरण किया गया है। मध्य में भगवान शिव की प्रतिमा स्थापित करके इसे भव्य ही नहीं बल्कि प्रेरणादायक बना दिया गया है। धन्य वे कर्मयोगी जिन्होंने अपना जीवन एक शुभ कार्य के लिए समर्पित कर दिया।

कैराना के तालाब

मेरठ-करनाल (हरियाणा) मार्ग पर शामली से लगभग 10 किलोमीटर एवं मुजफ्फरनगर से लगभग 50 किलोमीटर पर स्थित है मुस्लिम बाहुल्य तहसील कैराना। आपराधिक आंकड़ों-टी. वी. एवं अखबारों की बात मानें तो आजकल कैराना देशी-विदेशी शस्त्रों की अवैध मण्डी बन गया है। कुछ कैराना निवासियों ने तो हम से इसे मिनी पाकिस्तान तक कहा।

कैराना में दो प्राचीन तालाब हैं:

1. नहरवाला या नवाबों का तालाब
2. देवी मन्दिर तालाब

कहा जाता है कि कैराना को कर्ण ने बसाया था। कैराना के अतिरिक्त इसके समीप करनाल और कैथल (हरियाणा) को भी कर्ण द्वारा बसाया बताया जाता है। महाभारत के अनुसार दुर्योधन ने कर्ण को अंग देश का राजा बना कर अपना मित्र बना लिया था। वर्तमान में भागलपुर (बिहार) का क्षेत्र उस समय अंग देश कहा जाता था। लेकिन दुर्योधन उन परिस्थितियों में कर्ण को इतनी दूर नहीं भेज सकता था। इसलिए सम्भव है कि उसने हस्तिनापुर के समीप ही उसे एक विशाल भू-भाग दे दिया हो जो हस्तिनापुर के अंग के रूप में अंग देश के नाम से प्रसिद्ध हुआ हो। एक बात यह भी हो सकती है कि महाभारत युद्ध के समय इस भू-भाग पर कर्ण ने अपनी छावनी एवं शिविर स्थापित करते हुए इनका नाम कैराना (कर्णाना) करनाल (कर्ण वाला) एवं कैथल (कर्ण स्थल) रख दिया हो। ये दोनों तालाब भी कर्ण द्वारा निर्मित हैं। बाद में इनका जीर्णोद्धार होता रहा है।

नहरु वाला या नवाबों का तालाब

इस पुस्तक के सर्वाधिक विस्मयकारी तालाबों में है यह तालाब। 'खण्डहर बता रहे हैं इमारत बुलंद थी' कहावत के अनुसार किसी काल में यह परी लोक या परियों का स्नानागार (काल्पनिक परियों का स्थान) रहा होगा। सम्भवतः इसकी सुन्दरता के कारण ही इसे परियों द्वारा निर्मित बताया जाता है। कैराना वासी बताते हैं कि यहां के एक हकीम ने जिन्न की गर्भवती पुत्री (या बहू) का इलाज किया था और वरदान रूप में जिन्नों ने एक रात में ही इसे बना दिया था।

यह विशाल तालाब लगभग दस एकड़ में फैला है। चारों ओर सीढ़ियां एवं दो तरफ पक्के घाट बने हैं। इसके मध्य में एक चबूतरा बना है जहां पहुंचने के लिए नावों का प्रयोग होता था। कहा जाता है कि यह सूर्य मन्दिर का अवशेष है। इसके एक ओर किलेनुमा इमारत बनी है जिसे गढ़ी कहा जाता है। सम्भवतः यह कर्ण का विश्राम स्थल रहा होगा। मुगलकाल में इसके कसौटी के स्तम्भ पानीपत स्थित कलन्दरशाह की दरगाह में लगा दिये गये।

अब इसमें मुस्लिम परिवारों का आवास है। इसके नीचे वे सुरंगें दिखाई देती हैं जिनसे होकर तालाब को भरने के लिए यमुना से जल आता था। तालाब से लगभग दस फुट चौड़ी एक पक्की नहर निकाली गई है। इस नहर के द्वारा तालाब के प्रदूषित जल को दूसरे कच्चे तालाब (बाबा पिंटी तालाब) में डाला जाता था जो सिंचाई के काम आता था। इस प्रकार तालाब को स्वच्छ जल से परिपूर्ण रखा जाता था। बुजुर्ग लोग बताते हैं कि इसे सूर्य ताल कहा जाता था और कर्ण का यह विशेष प्रिय स्थल था।

बताया जाता है कि इसका निर्माण जहांगीर एवं शाहजहां के पैतृक एवं पारिवारिक हकीम मुकर्रब खान ने कराया था। परन्तु

मुजफ़्फरनगर जनपद के कैराना कस्बे में स्थित नवाबों के तालाब से पानी बाहर निकालने के लिए बनी लाखौरी ईंटों की नालियां

मुजफ़्फरनगर जनपद के कैराना कस्बे में स्थित नवाबों का तालाब

इसका वास्तुशिल्प भारतीय अथवा हिन्दु वास्तु शिल्प पर आधारित है। इससे यह कथन असत्य सिद्ध होता है। हो सकता है कि तालाब से प्रभावित होकर हकीम ने इसका जीर्णोद्धार करा दिया हो। कुछ भी हो यह तालाब जलाशय वास्तु का अदभुत नमूना है। अब इस पर अतिक्रमण हो रहा है। कचरा डाला जा रहा है। एक कोने में मस्जिद बना दी गई है। पुरातात्विक संरक्षण में होते हुए भी कर्ण का यह तालाब सिसकियां ले रहा है।

बुजुर्ग लोग बताते हैं कि कैराना में कभी कर्ण द्वारा निर्मित 360 विशाल कुएं थे जिनमें से अब 2-4 के अवशेष ही प्राप्त होते हैं। काल्पनिक ही सही लेकिन कर्ण के समय में कैराना अवश्य ही परी लोक रहा होगा।

यह तालाब कैराना से बाहर करनाल रोड पर कसाईयों के मोहल्लों में स्थित है।

देवी मन्दिर वाला तालाब

शामली मार्ग से कैराना में प्रवेश करते ही है देवी-मन्दिर तालाब। इसे कर्ण एवं मराठों का तालाब भी कहा जाता है। तालाब के तट पर देवी का मन्दिर होने के कारण ही इसे देवी मन्दिर तालाब भी कहा जाता है। यद्यपि यह दो तरफ से सीढ़ीदार एवं दो तरफ से कच्चा है लेकिन इसकी सुन्दरता में कोई कमी नहीं है। महाभारत के पश्चात् यह स्थान वनखण्ड में परिवर्तित हो गया तो मराठा काल में मराठों ने इसका जीर्णोद्धार कराया। देवी एवं शिव मन्दिर उसी काल के हैं। वनखण्ड होने के कारण शिवमन्दिर वनखण्डी महादेव कहा जाता है। यहां पर अन्य देव मन्दिर भी हैं। तालाब का पानी सूख चुका है और इसे पार्क का रूप दिया जा रहा है। उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार में मंत्री रहे चौधरी हुकुम सिंह ने अपने समय में (लगभग सन् 2000 ई. में) इसका जीर्णोद्धार कराया था। अब तो यह स्थान कैराना की पहचान समझा जाता है। मन्दिरों में स्थापित देवी दुर्गा एवं शिवलिंग चमत्कारिक रूप में विख्यात हैं।

कांधला के तालाब

बागपत-सहारनपुर मार्ग पर जिला मुजफ़्फरनगर में बुढ़ाना से 47 किलोमीटर है 'कांधला'। कैराना यहां से मात्र 10 किलोमीटर है। कहा जाता है कि कांधला कभी कैराना का ही एक भाग एवं कर्ण के राज्य का अंग था। कांधला में कर्ण की घुड़साल थी। घुड़साल के स्थान पर वर्तमान में जैन मन्दिर खड़ा है। यहां पर कर्ण द्वारा निर्मित दो तालाब, आल्हा ऊदल काल के प्रसिद्ध 'कुरयल, कुरियर अथवा बौना चोर' द्वारा स्थापित एक शिवमन्दिर एवं मराठाकालीन दो प्राचीन कुओं वाला असौन्डा मन्दिर है। कांधला का सम्बन्ध अकबर, शाहजहां-जहांगीर आदि खिलाफत आंदोलन एवं स्वदेशी आंदोलन से भी रहा है। अब यह इस्लामिक विद्वत्ता का केंद्र माना जाता है।

सूरज कुण्ड

कांधला में यमुना नहर के समीपस्थ है सूरज कुण्ड। नाम से ही सिद्ध होता है कि इसका निर्माण कर्ण द्वारा किया गया है। तालाब कच्चा है लेकिन व्यवस्थित है। तालाब के उत्तर में पक्का घाट बना है जिसकी शैली महाभारतकालीन है। इसी ओर शिव आदि देवताओं के मन्दिर बने हैं। खुदाई में जो प्राचीन शिवलिंग प्राप्त हुए हैं वे भी यहीं पर स्थापित कर दिये गये हैं। समय-समय पर इसका जीर्णोद्धार होता रहा है। यहीं पर एक प्राचीन कुआं भी है जिसका पानी सूख चुका है। धार्मिक उत्सवों पर कांधला निवासी इसमें स्नान कर स्वयं को धन्य मानते हैं।

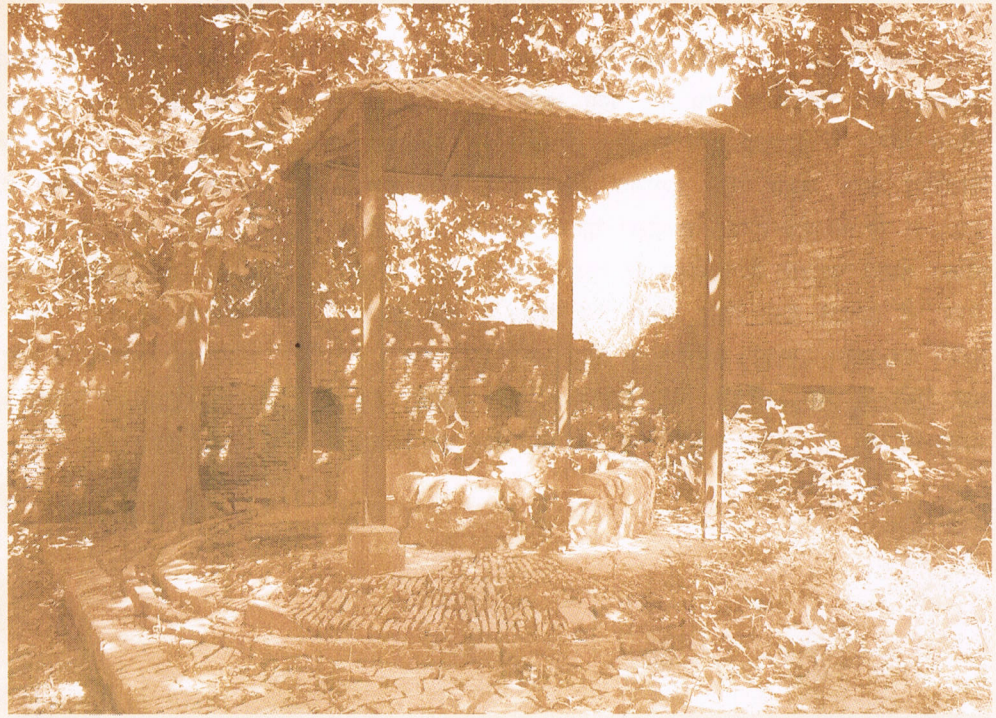

मुजफ़्फरनगर जनपद के कांधला कस्बे में सूरजकुण्ड मन्दिर परिसर में मौजूद प्राचीन कुआं

पक्का तालाब

कांधला के दक्षिणी जंगली भाग में है 'पक्का तालाब'। यह तालाब चारों ओर एवं तल में भी पक्का है। इसके चारों ओर घाट एवं दो तरफ सीढ़ियां बनी थीं जो अब टूट-फूट चुकी हैं। अब तो पक्का होने के अवशेष अथवा चिन्ह ही ोष रहे हैं। तालाब लगभग दस फुट गहरा बताया जाता है परन्तु अब इसमें कुछ फुट भराव करके कृषि की जा रही है अर्थात् तालाब की मौत हो चुकी है। तालाब का जीर्णोद्धार मराठों द्वारा कराया गया था। मराठों द्वारा निर्मित एवं उद्धारित मन्दिर आज भी अच्छी अवस्था में है। यहीं पर रामलीला का मंचन भी होता है। लगभग 15-16 बीघा कृषि भूमि की आय इसकी देख-रेख में काम आती है। इसकी व्यवस्था 'उत्थान समिति' के हाथों में है।

अंडोसर मन्दिर एवं कुएं

कहा जाता है कि यहां कभी कोई विशाल तालाब था। उसे पाण्डव-सरोवर अथवा पाण्डव सर कहा जाता था। इसी के किनारे मन्दिर में पाण्डवों द्वारा स्थापित शिवलिंग को पाण्डेश्वर शिवलिंग कहा जाता था। इसलिए यह स्थान पाण्डवसर-पाण्डेश्वर से अपभ्रंश होकर पाण्डोसर या पण्डोसर हो गया जो विकृत होकर पंडोसर से अंडोसर हो गया। इसकी नीची भूमि आज भी तालाब होना सिद्ध करती है। मराठों ने इसे अपने ठहरने का स्थान बनाया। इसमें दोनों ओर कमरे आदि बने हैं। यह आगे से तीन मंजिला एवं अन्दर से दो मंजिला है। समस्त परिसर के लगभग मध्य में एकदम पास-पास बने हैं दो कुएं। दो कुओं का होना यहां अधिक संख्या में लोगों के निवास होने का द्योतक है। सम्भवतः यहां मराठा सैनिक रहते थे। कुएं सूख चुके हैं। कैसी विडम्बना है कि मन्दिर के पुजारी तो घर सोते हैं और मन्दिर की देखभाल सद्दीक खां (रांघड़) नामक व्यक्ति करता है। मन्दिर के बाहरी भाग (द्वार-दुबारी) के ऊपरी ओर एक दुमंजिला बारजा बना है जिस पर लगे शिलालेख पर लिखा है कि 'इस बारजे का निर्माण लच्छीराम-सेवाराम निवासी शामली ने अपने पुत्र पूरन चंद के विवाह के उपलक्ष्य में कराया जो बारात झण्डामल-बारूमल के यहां सन् 1938 में आई थी।

मुजफ़्फरनगर जनपद के कांधला कस्बे में स्थित खेत में तब्दील हो चुका प्राचीन पांडवसर तालाब

मनकामेश्वर मन्दिर

कांधला में प्रवेश करते ही यमुना नहर के पुल के एकदम समीप है मनकामेश्वर मन्दिर। यद्यपि हमारा अभीष्ट तालाब है लेकिन चूंकि सम्भवतः यह ऐतिहासिक चोर द्वारा स्थापित है इसलिए हम इसको छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकते। कहा जाता है कि आल्हा ऊदल (परमार वंशीय राज्य काल में) काल के एक प्रसिद्ध, चालाक और शातिर चोर कुरियर या बौना चोर ने कराई थी इस मन्दिर की स्थापना। टूट-फूट गया तो लगभग 150 वर्ष पूर्व कांधला के किसी वैश्य परिवार ने यहां मन्दिर की पुनर्स्थापना की। (ऊंचाई एवं अव्यवस्था के कारण शिलालेख नहीं पढ़ा जा सका)। परन्तु 'मनकामेश्वर' शब्द मराठों का है। ऐसा ही एक शिवलिंग शामली में हनुमान टीले पर भी है। तो क्या इसकी स्थापना मराठों ने की थी?

बनी वाला तालाब

मेरठ-शामली मार्ग पर बुढ़ाना से लगभग तीन किलोमीटर दूर गांव खरड़ (जनपद मुजफ़्फरनगर) में है 'बनी वाला' तालाब। तालाब लगभग छः एकड़ का है। इसके उत्तरी भाग में एक घाट बना है जिसमें बारह सीढ़ियां हैं। घाट पर दो शिलालेख लगे हैं जिनमें एक तो प्राचीनता के कारण घिस कर अपठनीय हो गया है जबकि दूसरे शिलालेख पर लिखा है कि "लाला दखनी के पौत्र-प्रपौत्रों ने विक्रमी सम्वत् 2016 (अर्थात सन् 1959 ई.) में बनवाया।" यह शिलालेख केवल घाट के लिए है। यहां पर शिवमन्दिर एवं एक कुआं भी है। मन्दिर पर 104 वर्षीय सन्त स्वामी प्रेम गिरि शिष्य ब्रह्मलीन स्वामी गोपाल गिरि (किशनपुर बराल वाले) एवं उनके शिष्य रहते हैं। स्वामी जी ने सन् 1957 में यहां शाकुम्मरी देवी के भव्य मन्दिर का निर्माण भी कराया है। इस स्थान पर हजारों बन्दर रहते हैं। साधु-सन्तों के निवास के रूप में यहां बहुत बड़ा हाल बरामदा एवं रसोई आदि बनी है।

इसे बनी वाला तालाब क्यों कहते हैं? कितना प्राचीन है यह? गांव का नाम खरड़ क्यों है? आदि प्रश्नों का उत्तर निम्न है:

महाभारत काल में यहां विशाल वन था जिसके अवशेष के रूप में आज भी पांच सौ अट्ठाईस बीघे का विशाल वन उस काल के वन का दर्शन कराने के लिए पर्याप्त है। वन में असंख्य कदम्ब वृक्षों का होना इसे महाभारतकालीन वन सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। कदम्ब वृक्ष अधिकांशतः महाभारतकालीन ही होते हैं। इनकी धीमी वृद्धि इन्हें दीर्घायु प्रदान करती है। ग्रामीण बताते हैं कि अत्यधिक प्राचीन एवं विशाल वृक्ष यहां से काट लिए गये हैं। वन एवं वनस्पति विशेषज्ञों के अनुसार इस वन में मिलने वाली वनस्पति 'आधा टोड़ा या अडूसा' इस वन को अति प्राचीन एवं विकसित वन सिद्ध करता है। वन में अनेक औषधीय पौधे भी पाये जाते हैं। यहां के वन एवं परीक्षितगढ़ में स्थित शृंग ऋषि आश्रम के वनखण्ड में काफी समानता का पाया जाना ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। वन में स्थित होने के कारण ही इसे 'बनी वाला' तालाब एवं प्राचीन होने के कारण 'बड़ा शिव मन्दिर' बोलते हैं। मन्दिर का शिवलिंग जलाभिषेक के कारण समाप्त हो गया तो लगभग 200 वर्ष पूर्व ग्रामीणों एवं भक्तों ने प्राचीन योनि में ही नवीन शिवलिंग की स्थापना कर दी।

यहां से कुछ दूरी पर स्थित शीतला माता का मन्दिर एक नवीन रहस्य ही उद्घाटित कर रहा है। मीरापुर में भीम के पौत्र एवं घटोत्कच के पुत्र बरबरीक की तपस्थली एवं आराध्या देवी के रूप में 'शीतला माता' का मन्दिर है जिसे बबरे वाली कहा जाता है। इन दोनों का मूर्तिविहीन वास्तु शिल्प दोनों को समान सिद्ध करता है तो क्या दोनों की स्थापना बरबरीक ने की थी? सम्भव है कि कुरुक्षेत्र को आते-जाते कभी यहां बरबरीक ने पड़ाव डाल कर शीतला माता की स्थापना और उपासना की हो। दोनों स्थानों पर ही ज्येष्ठ शुक्ला दशमी (गंगा दशहरा) को मेला लगना क्या प्रदर्शित करता है? गिहारा समाज दिल्ली द्वारा मन्दिर का जीर्णोद्धार कराकर 9 जून 2003 को दुर्गा माता की प्रतिमा की स्थापना की गई है। मन्दिर परिसर में खसरा, कन्ठी माता, थांवरिया, शीतला माता, काली एवं गोरख नाथ आदि के स्थान भी बने हैं। गिहारा समाज, दिल्ली के लोग अधिकांशतः यहां आकर माता की पूजा अर्चना करते हैं।

मुजफ़्फरनगर जनपद के खरड़ गांव में मौजूद महाभारतकालीन बनी का तालाब

इस ग्राम का नाम खरड़ क्यों पड़ा? खंडन, खंडशः, खटक, खटराग एवं खड्ड आदि शब्दों के संयोग अथवा तालमेल से बना है खरड़ शब्द। महाभारत के अनुसार युद्ध की समाप्ति पर दुर्योधन युद्ध क्षेत्र से आकर तालाब में छिप गया तो भीमसेन ने पीछा करके अपने वाग्बाणों से उद्वेलित करके उसे बाहर निकाला - महाभारत में उस तालाब का नाम द्वैपायन लिखा है-

तमन्वधावत् संक्रुद्धो भीमसेनः प्रतापवान्।
ह्रदे द्वैपाने चापि सलिलस्थं ददर्ष तम्।।

(महाभारत अनुगीता पर्व अ. 60 श्लोक 27)

"इधर से अत्यन्त क्रोध में भरे हुए प्रतापी भीमसेन ने उसका पीछा किया और द्वैपायन नामक सरोवर में पानी के भीतर छिपे हुए दुर्योधन का पता लगा लिया।"

तब भीम ने कृष्ण का इशारा पाकर गदायुद्ध के नियमों के विपरीत दुर्योधन की जंघा खण्ड-खण्ड कर दी। इस बात पर बलराम एवं कृष्ण का संवाद-विवाद भी हुआ। दुर्योधन की जंघा तोड़कर शरीर का खण्ड-खण्ड (खण्डशः) किया। दुर्योधन अपने मन में खटक (आशंका-हिचक-चुभन-चिंता) लेकर तालाब में छुपा। भीमसेन दुर्योधन के इस युद्ध में कृष्ण-बलराम का खटराग (झमेला/झगड़ा) हुआ। इस क्षेत्र में अत्यधिक खड्ड (गहरे गड्ढे व ऊंची-नीची ज़मीन) थे। इन कारणों वश इसका नाम खड्डर-खड़र एवं खरड़ प्रसिद्ध हुआ। यह वही तालाब है जहां दुर्योधन छुपा और मारा गया। इस प्रकार इसका इतिहास महाभारत से भी प्राचीन है। महाभारत में तो इसका उपयोग मात्र हुआ है। द्वैपायन नाम से प्रतीत होता है कि इसकी स्थापना द्वैपायन व्यास ने की थी या उनका आश्रम था। अनेक राजवंशों से होता हुआ शाहजहां-जहांगीर काल में यह उनके हकीम मुकर्रब शाह की ज़ागीर में रहा। मराठों के पश्चात् यह अंग्रेजों के हाथ में आ गया।

कांच का तालाब

क्या कांच का तालाब भी हो सकता है? नहीं न ! तो जानियेः

मुजफ़्फरनगर-जानसठ के लगभग मध्य के सिखैडा गांव से तीन किलोमीटर दूर गांव बिहारी में है कांच का तालाब। हमने सोचा दुर्लभ और अत्यधिक रमणीक होगा यह तालाब परन्तु छोटी-छोटी पगडण्डियों, बरहों (खेतों की सिंचाई करने की छोटी-मोटी नालियां) और ईंख के खेतों से निकल कर जब हम पहुंचे तो लगभग 1000 मीटर का एक घास-फूंस-जंगली वनस्पति से अटा हुआ पानी युक्त गड्ढा सा देखकर माथा पीटने को जी चाहा। पुनः ऐसे ही दूसरे रास्ते से चलकर दूसरे स्थान पर पहुंचे तो वहां लगभग 25-30 मीटर का टूटे-फूटे लखोरी (छोटी) ईंटों के चबूतरे को वनखण्ड के रूप में देखकर चौंक जाना पड़ा। क्या है इन दोनों स्थानों का रहस्य? क्या है कांच का तालाब? कैसे बना बिहारीपुर?

मीलों तक फैले पाण्डवों के इस विहार स्थल के मध्य में था एक विशाल एवं भव्य तालाब, जिसमें प्रवेश करने के लिए बनी थीं स्वर्ण की सीढ़ियां। तालाब के चारों कोनों पर बने चार कुओं से पानी कम होने पर तालाब को जल से परिपूर्ण किया जाता था। तालाब के समीप ही एक स्थान चौसर (जुआ खेलने का एक खेल) खेलने का बना था। कौरव-पाण्डव यहां आकर कभी शिकार खेलते, कभी तालाब में जल-क्रीड़ा करते तो कभी चौसर खेलते। कहा जाता है कि कौरव-पाण्डव की निर्णायक द्यूत क्रीड़ा (जुआ) यहीं पर सम्पन्न हुई थी और उसमें अपने सर्वस्व सहित पाण्डव द्रौपदी को भी हार गये थे। चूंकि यह उनका विहार स्थल था और यहीं पर पाण्डव अपनी बहू द्रौपदी को हारे थे इसलिए इस स्थान का नाम 'बहुहारी' पड़ा जो अपभ्रंश एवं विहार स्थल के कारण 'बिहारी' हो गया। स्वर्ण निर्मित सीढ़ियां होने के कारण इसे 'कंचन (स्वर्ण) ताल' कहा जाता था जो कंचन से अपभ्रंश होकर मात्र कंच (न) रह गया। वनखण्ड सा प्रतीत होने वाला आज का छोटा सा चबूतरा कभी कुरुवंशियों का विशाल द्यूतस्थल था जहां चौसर बनी हुई थी। ग्रामीण बताते हैं कि चौसर एवं विशाल तालाब हमने अपनी आंखों से देखा है। यह तालाब अब गड्ढा मात्र रह गया है।

ग्राम के प्रधान सैय्यद शहनाज़ आलम बताते हैं कि कभी सुन्दरता के कारण इस विशाल कस्बे (अब गांव) को 'अनूप (अनोखा-सुन्दर) शहर' का खिताब दिया गया था। इसमें 85 विशाल कुएं थे जिनमें से कुछ के अवशेष आज भी दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

अनेक राजवंशों से होते हुए यह बाराह सादात में आ गया। इस क्षेत्र के सैय्यदों का दिल्ली दरबार में सदैव दबदबा रहा।

यहां पर लगभग 500 वर्ष पूर्व निर्मित एक जैन मंदिर भी है।

श्री पल्ला सैनी पुत्र रघुबीर सैनी आदि ग्रामीण बताते हैं कि जन्माष्टमी के शुभावसर पर भव्य झांकियों से सुसज्जित यहां कृष्ण भगवान की विशाल यात्रा निकाली जाती है जिसमें गांव के मुस्लिमों का तन-मन-धन से पूर्ण सहयोग रहता है।

ज्ञानेश्वर ताल एवं शिव मन्दिर

जनपद मुजफ्फरनगर की एक तहसील है जानसठ जो कि मुजफ्फरनगर-मवाना मार्ग पर मुजफ्फरनगर से लगभग 10 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। जानसठ एक प्राचीन रियासत रही है। यहां के सैय्यद बन्धु हसनअली एवं अब्दुल्ला अपने समय के 'किंग मेकर' माने जाते थे। उनके अनुसार दिल्ली के बादशाह को वे अपने 'जूते की नोक' पर रखते थे।

जानसठ महाभारतकालीन कस्बा है। इसका नाम जानसठ प्रसिद्ध होने के पीछे भी एक किवंदन्ती है। कुरुवंश की राजधानी हस्तिनापुर से सटा हुआ था ब्राह्मण बाहुल्य वाला यह कस्बा 'बामनौली'। पाण्डु पुत्रों पाण्डवों एवं धृतराष्ट्र-पुत्रों कौरवों में पारिवारिक विवाद अपनी चरम सीमा पर था। युद्ध का आगाज़ हो चुका था। देश का बुद्धिजीवी वर्ग युद्ध रोकना चाहता था। इसी विषय में तात्कालीन् राजनीतिक पुरोधा भगवान कृष्ण को कई बार सन्धि प्रस्ताव लेकर कुरुक्षेत्र हस्तिनापुर-दिल्ली की यात्रा करनी पड़ी। ऐसे ही एक अवसर पर भगवान कृष्ण ने जानसठ में रात्रि विश्राम किया और दुर्योधन को उसकी चाण्डाल चौकड़ी से पृथक कर एकान्त में समझाया। भगवान कृष्ण ने किसी सन्दर्भ में दुर्योधन को शठ (मूर्ख) की संज्ञा देते हुए 'यही ज्ञान है शठ' कहा। इन्हीं ज्ञान एवं शठ या जान ले शठ को जोड़ कर बन गया 'ज्ञानसठ' इसी से इसका नाम ज्ञानशठ प्रसिद्ध हुआ जो अपभ्रंश होकर जानसठ बन गया है। वैसे भी संस्कृत में 'ज्ञ' को 'ज' बोला जाता है जैसे यज्ञ या यज्य।

जिस स्थल पर भगवान कृष्ण एवं उनके साथियों ने रात्रि विश्राम किया था वह भगवान के चरणों से अति पावन हो गया तो यहां के निवासियों ने वहां पर शिव मन्दिर एवं तालाब का निर्माण कराया। यह तालाब लगभग 3-4 एकड़ में फैला हुआ है। यहीं पर काली माता का मन्दिर है। यह सिद्ध पीठ समझी जाती है। बाद में यहीं पर शमशान बनाकर भोले नाथ का श्मशानवासी नाम सार्थक कर दिया गया। वर्तमान में कच्ची दीवार अथवा मेंढ़ लगाकर तालाब को दो पृथक भागों में बांट दिया गया है। भगवान कृष्ण द्वारा ज्ञानोपदेश करने के कारण ही शिवमन्दिर का नाम ज्ञानेश्वर शिवलिंग एवं तालाब का नाम ज्ञानेश्वर ताल प्रसिद्ध हुआ।

चार दीवाली वाला कुआं

मुजफ्फरनगर की तहसील जानसठ हस्तिनापुर के बहुत समीप थी। सन् 1192 ई. के लगभग यह ब्राह्मणों की रियासत बामनौली थी। उसकी विशाल गढ़ी के अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। अन्य हिन्दू सम्पत्तियों के मानिन्द इस पर भी मुस्लिमों का कब्जा है। यहीं पर एक कुआं भी है। सैय्यदों ने धोखे से ब्राह्मणों को मारकर इसे भर दिया था। अब वह बन्द हो चुका है। सैय्यद काल की गढ़ी, कर्बला एवं द्वारों के अवशेष आज भी उनके अत्याचारों की कहानी सुना रहे हैं। विशाल कर्बला के पीछे लगभग आधा किलोमीटर दूर जंगल में स्थित है यह चार दीवाली वाला कुआं। कुआं तो अति साधारण एवं

लगभग 6-7 फीट व्यास का लखौरी ईंटों का बना है। साधारणतया इसमें कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती लेकिन है अत्यधिक प्रसिद्ध। क्योंकि इसके पास एक पुराना वृक्ष खड़ा है। दूर-दूर से आने वाले लोग भी इसकी पहचान नहीं कर पाये। प्रथम दृष्टया यह महुआ सा दृष्टि गोचर होता है परन्तु महुआ नहीं है। फल-फूल के स्थान पर इसमें लगभग एक फुट लम्बी पतली बाली सी निकलती है जिस पर लगभग एक मिलीमीटर के छोटे-छोटे लाल रंग के पुष्प आते हैं। पुष्पों की रचना 'बॉटल ब्रश' के पुष्पों जैसी होती है। यह वृक्ष सदाबहार रहता है अर्थात् कभी पूर्ण पतझड़ नहीं करता। यहां के निवासी एवं दूर से आने वाले उदर रोगी (प्लीहा एवं यकृत) इस के पत्ते उबाल कर पीते हैं और रोग मुक्त हो जाते हैं। चूंकि इसके पत्ते कुएं में भी गिरते रहते हैं इसलिए कुएं का पानी भी यकृत-प्लीहा जैसे उदर रोगों में रामबाण का कार्य करता है। किसने बनाया यह कुआं? किसने लगाया यह वृक्ष? क्यों कहते हैं इसे चार दीवाली वाला कुआं? आदि प्रश्नों के उत्तर में अनेक जनश्रुतियां उपलब्ध हैं लेकिन प्रामाणिकता, ऐतिहासिक कड़ियों एवं तर्क की कसौटी के आधार पर इसका निर्माण मराठों द्वारा प्रतीत होता है। ऐतिहासिक तथ्य है कि सन् 1746 से सन् 1803 ई. के लगभग तक देश की राजनीति में मराठों का विशेष प्रभाव रहा। उत्तरी भारत विशेषतया दिल्ली के समीप का क्षेत्र तो उनके विशेष अधिकार में रहा। उस काल में उन्होंने अनेक निर्माण कराये। कुएं मन्दिर-तालाबों पर तो उन्होंने विशेष ध्यान दिया। यह कुआं भी मराठों द्वारा बनाया गया था। बाद में इससे सिंचाई भी की गई। लगभग 40 वर्ष के आयु के जानसठ निवासी भी आंखों देखी बताते हैं कि आधा जानसठ एवं आस-पास के गांव भी यहां से पेय जल लेने आते थे।

बुजुर्ग बताते हैं कि लगभग 200 वर्ष पूर्व कहीं से एक महात्मा ने यहां झोंपड़ी डालकर वर्षों तक तपस्या की थी। उन्हीं महात्मा ने यह वृक्ष यहां लगाया था। तब से यह वृक्ष और

मुजफ़्फरनगर जनपद के जानसठ कस्बे में मौजूद प्राचीन व अद्भुत चार दीवाली वाला कुआं

कुआं गरीबों के डॉक्टर के रूप में उनका निःशुल्क इलाज कर रहा है। वृक्ष की वानस्पतिक पहचान एवं औषधीय तत्वों की खोज करके प्लीहा-यकृत की सस्ती औषधि का निर्माण किया जा सकता है। चार दीवाली वाला कुआं क्यों कहते हैं इसे? इसके दो कारण बताये जाते हैं। पहला यह कि गांववासी महात्मा की सेवा एवं सत्संग में महात्मा जी से पूछते 'महाराज ये विधर्मी कब तक शासन करेंगे? ये कब तक हमारे भगवान बने रहेंगे?' तो महाराज ऊपर की ओर इशारा करते हुए कहते 'सब चार दिन की दीवाली (दीपावली अर्थात खुशी) है'। दूसरा कारण कि जब मराठों ने यहां मुस्लिमों को पस्त कर निर्माण प्रारम्भ किया और यह कुआं बनाया तो मुस्लिमों ने कहा 'बना लेने दो महल-कुआं सब चार दिन की दीवाली है'। तब से ही यह चार दीवाली वाला कुआं प्रसिद्ध हो गया।

बाय वाला कुंआ

मेरठ-बिजनौर मार्ग पर मीरापुर से लगभग दो किलोमीटर दूर स्थित है बैराज-बिजनौर तिराहा। तिराहे से लगभग दो किलोमीटर चलकर गांव मुंझैड़ा गढ़ी आता है। मुझैड़ा गढ़ी के जंगल में कुछ कब्रें, कुछ मज़ार एवं एक विशाल कुआं अथवा बावड़ी मौजूद हैं।

जी हां, दूर-दूर तक बाय वाले कुएं के नाम से प्रसिद्ध है यह कुआं। भारत भी भगवान ने क्या बनाया है? कहीं कोढ़ ठीक करने वाला अमृत कूप, कहीं रोग ठीक करने वाले वृक्ष तो कहीं बाय ठीक करने वाला कुआं। विश्वास है कि इस कूप में नहाने एवं जल का सेवन करने से बाय (वात रोग) ठीक होता है। लेकिन गांव वालों का कहना है कि 'बाहर से आने वालों की बाय ठीक हो जाती हो, गांव वालों की तो होती नहीं।'

बाय वाला कुआं नाम कब से प्रसिद्ध हुआ यह तो किसी को पता नहीं लेकिन सत्य यह है कि बावड़ी वाला कुआं से अपभ्रंश होते-होते बाय वाला कुआं बन गया। वास्तव में छोटे तालाब का रूप 'बाव' है।

कूप की विशालता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि अष्टभुजी गोलाई वाले कुएं की एक भुजा दो मीटर है। इस प्रकार इसकी गोलाई 16 मीटर बैठती है। इस कुएं के साथ ही एक बावड़ी बनी है जिसमें उतरने के लिए 52 सीढ़ियां बनी हैं। इसमें दोनों ओर छोटे-छोटे स्नानघर बने हैं। बावड़ी की चौड़ाई लगभग 14 मीटर, गहराई लगभग 55 फीट तथा इसकी लम्बाई लगभग 50 मीटर है। कुएं की दीवार में एक द्वार बना है जो बावड़ी में खुलता है। कुएं को इस प्रकार बनाया गया है कि उसका तल स्थानीय जल स्तर से नीचा है।

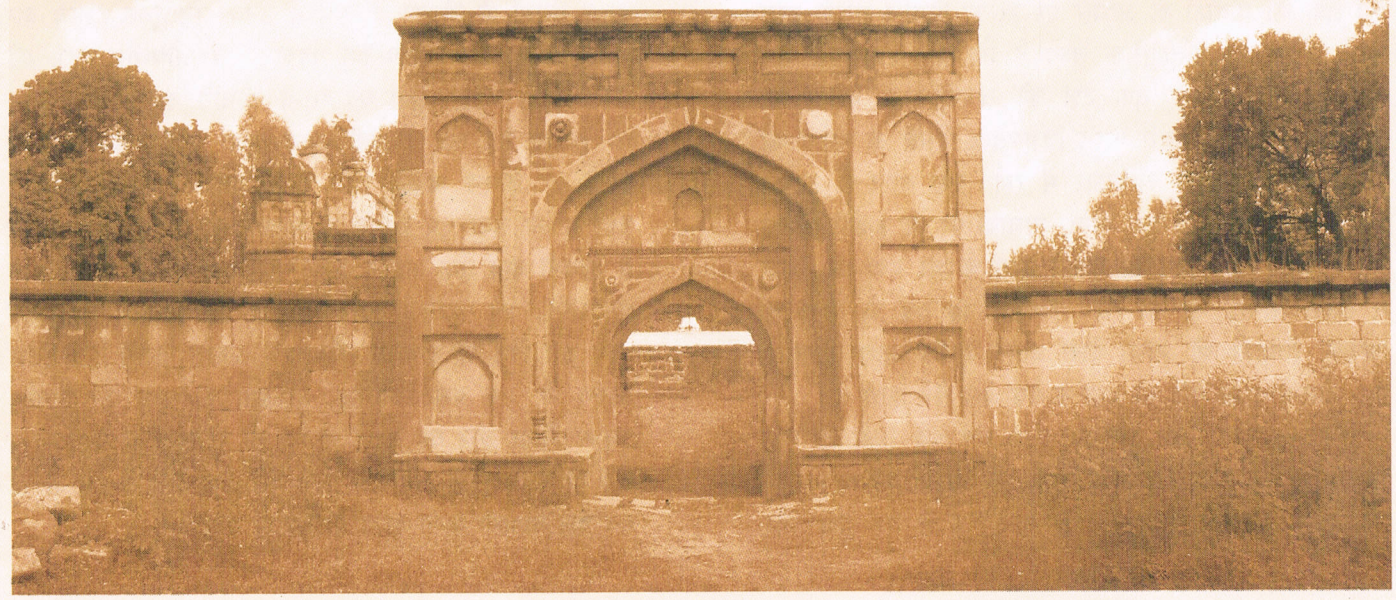

मुजफ़्फरनगर जनपद के मुझैड़ा गांव में स्थित गढ़ी